आर्य मान्यताएँ

ओ३म्

आर्य मान्यताएँ

लेखक एवं संकलनकर्त्ता :

कृष्णचन्द्र गर्ग

सम्पादक :

आचार्य राजवीर शास्त्री

प्रकाशक :

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, दिल्ली-११०००६

दशम् संस्करण, जुलाई २०१६

आर्य मान्यताएँ

प्रकाशक/विक्रय केन्द्र

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, दिल्ली-११०००६

दूरभाष कार्यालय : २३९८५५४५, ४३७८११९१, ९६५०५२२७७८

E-mail : aspt.india@gmail.com

मूल्य : १५ रुपये

दयानन्दाब्द	:	१९२
विक्रमाब्द	:	आषाढ़-श्रावण, २०७३
सृष्टि संवत	:	१,९६,०८,५३,११७
पूर्व प्रकाशित	:	१,०२,०००
प्रस्तुत दशम् संस्करण	:	१०,०००
कुल योग	:	१,१२,०००

मुद्रक :

तिलक प्रिंटिंग प्रेस

२०४६, बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६

दरभाष : ९८११७३२५०८ / ०११-२३२३१३६९

भूमिका

भाषा का ज्ञान सीमित होना, रुचि, समय अथवा धन का अभाव होना आदि अनेक कारणों से बहुत से लोगों की वैदिक सिद्धान्तों का बोध करवाने वाले सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, मनुस्मृति, उपनिषद्, वेद, शास्त्र आदि ग्रन्थों तक पहुँच नहीं है। उनमें बहुत सारे लोग तो केवल अपनी अनभिज्ञता के कारण ही पौराणिक पाखण्ड में फंसे हुए व्यर्थ में नाना प्रकार के दुःख भोगते रहते हैं। काफी समय से विचार कर रहा था कि कोई एक ऐसी पुस्तक होनी चाहिए जिसमें मुख्यतः सभी वैदिक सिद्धान्त वर्णित हों और सरल, संक्षिप्त तथा स्पष्ट भाषा में हों। जो उन महानुभावों को दी जा सके ताकि उन्हें भी अज्ञान अन्धकार से निकलने का अवसर मिल सके। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर तथा विशेषकर ऐसे सज्जनों की आवश्यकता पूर्ति के लिए ही यह पुस्तक तैयार की गई है।

आशा की जाती है कि यह पुस्तक हमारे बच्चों को और नौजवानों को भी आर्य सिद्धान्तों की जानकारी देने के लिए उपयोगी सिद्ध होगी तथा विवाह आदि के अवसरों पर और आर्यसमाजों के उत्सवों पर वितरण के लिए भी प्रयुक्त हो सकेगी।

पुस्तक में सिद्धान्तों की मौलिकता, विषय की स्पष्टता, भाषा की सरलता तथा संक्षेप पर विशेष बल दिया गया है। वैदिक सिद्धान्तों और मान्यताओं को उसी रूप में प्रकट किया गया है, जिस रूप में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है। पुस्तक की सामग्री मुख्यतः महर्षि द्वारा लिखित पुस्तकों से तथा उन द्वारा प्रतिपादित ग्रन्थों से ली गई है। बहुत से स्थलों पर महर्षि दयानन्द की भाषा और शैली को ज्यों का त्यों रखा गया है।

महर्षि दयानन्द एक ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने हम भारतीयों के पतन और पराधीनता के वास्तविक कारणों-बुद्धि की जड़ता, अज्ञानता, दुर्बुद्धि, दुराग्रह, शिथिलता, निष्क्रियता आदि दोषों को समुचित ढंग से, वेदों के सबल आश्रय से तथा अपने पूर्ण सामर्थ्य से दूर करने का प्रयत्न किया। उस महर्षि के प्रति हम आभार प्रकट करते हैं।

कृष्णचन्द्र गर्ग

सम्पादकीय

मानव का सबसे बड़ा शत्रु है–अज्ञान। अज्ञान में फंसा व्यक्ति सन्मार्ग से भटक कर घोर अन्धकार की बीहड़ वीथिकाओं में भटकता रहता है। इसीलिए योगदर्शन के भाष्यकार महर्षि व्यास ने ठीक ही कहा है–'अविद्या नेत्री सर्वक्लेशानाम्। अर्थात् अविद्या के कारण ही संसार के समस्त क्लेश सताते रहते हैं। यद्यपि अन्याय और अभाव भी मानव के शत्रु हैं किन्तु इनके मूल में अविद्या ही कारण होती है। अविद्या से अभिप्राय ज्ञान के सर्वथा अभाव से ही नहीं है, अपितु मिथ्याज्ञान या विपरीत ज्ञान भी अविद्या के ही अन्तर्गत आते हैं वरन् यह कहना चाहिये कि अज्ञान की अपेक्षा मिथ्याज्ञान व विपरीत ज्ञान अधिक दुःखदायी होते हैं। आज का मानव मिथ्याज्ञान के कारण अधिक भटका फिरता है। जब उसे सत्यज्ञान की कोई किरण मिल जाती है, तो वह गद्‌गद् होकर उसके पीछे भागने लगता है।

आर्य मान्यताएँ-ऐसी श्रेष्ठ मान्यताएँ हैं महाभारत के पांच हजार वर्षों के बाद एक महर्षि इस देश में आये, जिन्होंने इस देश में सर्वत्र घूम-घूमकर देश की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक दुर्दशा को एक कुशल चिकित्सक की भाँति खूब परखा और योग्य गुरु से दीक्षा लेकर तपस्या व योगसाधना की भट्‌टी में अपने को खूब सन्तप्त करके रोगाक्रान्त देश के रोग को दूर करने और घोर-अन्धकार तुल्य पाखण्डों व मिथ्याज्ञानों की सघन घटा को छिन्न-भिन्न करने के लिए ब्रह्मचर्य के प्रचण्ड व दुर्धर्षणीय तेज को सूर्यसम धारण करके वेद को निर्भ्रान्त प्रकाश की छाया में खूब परखा। ये बातें ही ऐसी श्रेष्ठ मान्यताएँ हैं जो महर्षि ने अपने सद्‌ग्रन्थों में लिखी हैं उन्हीं का नाम आर्य मान्यताएं हैं। उनको जिसने भी पढ़ा वह इतना लट्‌टू हो गया कि गुरुदत्त जैसा कुशाग्र बुद्धि विद्यार्थी भी यह कहता है कि यदि मैं अपनी सारी सम्पत्ति को बेचकर भी महर्षि कृत ग्रन्थों को पा लेता तो अपने को कृतकृत्य समझता। किन्तु अत्यन्त दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आज के अत्यधिक व्यस्त जीवन में उनको पढ़ने का ही समय कहाँ मिल पाता है। महर्षि की यह बलवती इच्छा थी–

संसारेअस्मिन् विलसतु पुनर्भव्यवेदांशुमाली
संस्काराणां भवतु महतां पावनानां प्रचारः।
वेदोपदेशामृतजलधरो भक्तिधारां प्रवर्धन्
लोकस्वान्ते सकलसुखदा स्यन्दतां स्नेहधारा॥

इस पुस्तक में सुख शान्ति व स्नेहामृत पिलाने की भावना से ही महर्षि द्वारा उद्धृत ग्रन्थों से चयन करके विद्वान् लेखक ने आर्य मान्यताओं का संग्रह बहुत ही श्रद्धाभाव से किया है। इन आर्य मान्यताओं को पढ़कर जन साधारण का तो कल्याण अवश्य होगा। किन्तु अविकसित मति अपरिपक्व बुद्धि, विवेकहीन नवयुवा पीढ़ी के लिए महर्षि की यह सज्ञान ज्योति मिथ्यापाखण्ड संशय व भ्रमजाल के उन्मूलन करने में अवश्य सक्षम हो पायेगी, ऐसी हमें पूर्णाशा है।

इस पुस्तक के संकलयिता श्री कृष्णचन्द्र गर्ग किशोर दशा में ही आर्य विचारधारा के प्रति आकृष्ट हुए और पंजाब विश्वविद्यालय से गणित विषय में एम. ए. करके डी.ए.वी. कालेज हिसार में अध्यापन कार्य करने लगे। मोदी कालेज पटियाला में भी कुछ वर्ष अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् सात वर्ष तक अमेरिका में भी अध्यापन कार्य किया। इसके साथ-साथ ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का स्वाध्याय करते रहे। और ऋषि के प्रति आपकी आस्था उत्तरोत्तर बढ़ती गई। इस पुस्तक में सभी वैदिक सिद्धान्तों और मान्यताओं का बहुत ही सरल व सुबोध भाषा में उल्लेख किया है। ऐसी संक्षिप्त व सरल पुस्तकों के द्वारा आर्य मान्यताओं का प्रचार व प्रसार होगा। आर्य विचारधारा से प्रभावित स्वाध्यायशील इस पुस्तक से अवश्य प्रभावित होंगे। और अपने युवक युवतियों के हाथों में पहुँचाकर इस वैदिक ज्योति को फैलाने में सहायक बनेंगे। विवाह आदि अवसरों पर उपहार स्वरूप तथा विद्यालयों में पुरस्कार रूप में देकर नव पीढ़ी तक इस ज्योति को फैलाकर अवश्य सहयोग करेंगे, ऐसी हमें पूर्णाशा है। अन्त में आर्य मान्यताओं में अनन्य आस्था रखने वाले लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं। और उनके उत्तम स्वास्थ्य व दीर्घजीवन की कामना करता हूँ।

विनीत–राजवीर शास्त्री

विषय सूची

अध्याय १

ईश्वर विषय

१. ईश्वर एक है, अनेक नहीं

ईश्वर एक है, अनेक नहीं–वेद और वेदानुकूल सभी ग्रंथों में ऐसा ही लिखा है। एक ईश्वर ही अनेक नामों से पुकारा गया है। प्रत्येक नाम उसके किसी न किसी गुण को प्रकट करता है। जैसे–

ब्रह्म–सबसे बड़ा।

ब्रह्मा–सब जगत् को बनाने वाला।

शिव–कल्याण स्वरूप और कल्याण करने वाला।

विष्णु–चर और अचर सब जगत् में व्यापक।

रुद्र–दुष्ट कर्म करने वालों को दण्ड देकर रुलाने वाला।

गणेश–सब का स्वामी और पालन करने वाला।

पिता–सब की पालना और रक्षा करने वाला।

देव–विद्वान् और विद्या आदि देने वाला।

यम–सब प्राणियों को न्यायपूर्वक यथायोग्य कर्मफल देने वाला।

भगवान्–ऐश्वर्यवान्।

चन्द्र–आनन्द स्वरूप और सबको आनन्द देने वाला।

ओ३म्–यह शब्द तीन अक्षरों अ, उ, म् से बना है। अ+उ = ओ। ओ और म् के बीच में लिखा '३' ओम् के उच्चारण को लम्बा करने का (प्लुत का) निर्देश देता है।

अ–विराट्, अग्नि, विश्व आदि।

उ–हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस आदि।

म्–ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि।

विराट्–जो बहुत प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे।

अग्नि–ज्ञान स्वरूप सर्वज्ञ।

विश्व–जो आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में प्रविष्ट हुआ है।

हिरण्यगर्भ–जो सूर्य आदि तेज वाले पदार्थों का उत्पत्ति तथा निवास स्थान है।

वायु–जो सब चराचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता है।

तैजस–जो स्वयं प्रकाशस्वरूप तथा सूर्य आदि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करने वाला है।

ईश्वर–सामर्थ्यवान्।

आदित्य–जिसका विनाश कभी न हो।

प्राज्ञ–जो सब चराचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है।

ईश्वर के सब नामों में 'ओम्' सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इससे उसके सबसे अधिक गुण प्रकट होते हैं। यही ईश्वर का प्रधान और निज नाम है। अन्य सभी नाम गौण हैं।

ओ३म् खं ब्रह्म। (यजुर्वेद ४०, १७)

अर्थ–आकाश के समान व्यापक, सबसे बड़ा, सब जगत का रक्षक ओ३म् है।

ओ३म् क्रतोस्मर। (यजुर्वेद)

अर्थ–ऐ कर्मशील मनुष्य ! ओ३म् को याद रख।

ओम् इति एतद् अक्षरम् उद्गीथम् उपासीत। (छान्दोग्योपनिषद्)

अर्थ–ओम् जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसी की उपासना करनी योग्य है, और किसी की नहीं।

ओम् इति एतद् अक्षरम् इदम् सर्वं तस्य उपव्याख्यानम्।

(माण्डूक्योपनिषद्)

अर्थ–वेदादि सब शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम 'ओम्' को कहा गया है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओम् इति एतत्॥

(कठोपनिषद्)

अर्थ–सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, जिसे जानने के लिए सब तप किए जाते हैं, जिसकी चाहना में यति लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद संक्षेप में तुझे बताता हूँ, वह पद ओम् है।

* * * *

२. ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव

ईश्वर निराकार है। उसकी कोई शकल सूरत नहीं है। उसकी कोई मूर्ति भी नहीं बन सकती। इसी कारण वह आंख से देखा नहीं जा सकता। नाक, कान, जिह्वा, त्वचा-इंद्रियां भी उसका अनुभव नहीं कर सकतीं।

ईश्वर सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा सर्वत्र व्यापक है। वह सूक्ष्म इतना है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु में भी रमा हुआ है। कोई अणु भी उसकी उपस्थिति के बिना नहीं है। सभी जगह व्यापक होने के कारण उसे महान् से महान् भी कहा जा सकता है।

ईश्वर अन्तर्यामी है। आत्मा शरीर में बहुत सूक्ष्म पदार्थ है परन्तु ईश्वर उस आत्मा में भी विद्यमान है। इसी कारण से ईश्वर को अन्तर्यामी कहा गया है।

ईश्वर अजन्मा, अनन्त और अनादि है—वह कभी उत्पन्न नहीं होता है। जो वस्तु उत्पन्न होती है वह मरती भी अवश्य है। क्योंकि ईश्वर कभी उत्पन्न नहीं होता इसलिए वह कभी मरता भी नहीं। वह सदा रहने वाला है।

ईश्वर ज्ञानवान् तथा न्यायकारी है। संसार में फैले सम्पूर्ण सद्ज्ञान का स्रोत ईश्वर ही है। वह पूर्ण ज्ञानी है। वेदों के रूप में उसने ही सारा ज्ञान प्राणिमात्र के कल्याण के लिए दिया है। वह सभी जीवों के कर्मों को देखता तथा जानता है। उन्हें उनके कर्मों के अनुसार यथायोग्य सुख व दुःख के रूप में फल देता है। सभी जीव कर्म करने में स्वतन्त्र हैं परन्तु उन कर्मों के अनुसार फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र हैं। यानि किए हुए कर्म का फल भोगने में जीव की मर्जी नहीं चलती। उसे अवश्य फल भोगना ही पड़ता है।

उत्पत्ति और प्रलय करने वाला भी ईश्वर ही है। सृष्टि की रचना करना, सभी जीवों को उनके कर्मों के अनुसार उत्पन्न करना, तथा सृष्टि का प्रलय करना भी उसी के हाथ में है।

ईश्वर आनन्द स्वरूप है। उसके समीप जाने से आनन्द प्राप्त होता है। जैसे सर्दी में ठिठुरते हुए को आग के पास जाने से सुख मिलता है। ईश्वर की जीव से समय या स्थान की दूरी नहीं है। यह दूरी ज्ञान की है। पवित्र मन से उस ईश्वर का ध्यान करने से उसकी समीपता अनुभव होती है।

ईश्वर दयालु है। उसने दया करके ही अनन्त पदार्थ हमारे सुख के लिए दे रखे हैं। जैसे वायु, जल, अन्न, सब्जियाँ, फल, औषधियाँ आदि।

ईश्वर निर्विकार है। उसमें राग, द्वेष, मोह, लोभ, काम, क्रोध, अहंकार आदि विकार नहीं आते।

ईश्वर अनुपम है। उसके समान दूसरा कोई नहीं है। उपरोक्त गुणों को धारण करने वाला वह अकेला ही है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। उसे अपने दया, न्याय, सृष्टि की रचना, प्रलय आदि काम करने के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। बिना हाथ, पैर सहज में ही अपने सभी काम वह स्वयं ही कर लेता है।

ईश्वर की प्रेरणा—मनुष्य जब कोई अच्छा काम करने लगता है तो उसे आनन्द,

उत्साह तथा निर्भयता महसूस होती है, वह ईश्वर की तरफ से ही होती है। मनुष्य जब कोई गलत काम करने लगता है उसे भय, शंका, लज्जा जो होती है वह भी ईश्वर की तरफ से होती है।

जो मनुष्य सब का उपकार करने और सब को सुख देने वाले हैं ईश्वर उन्हीं पर कृपा करता है। कोई मनुष्य जगत का जितना उपकार करता है उसको उतना ही सुख ईश्वर की व्यवस्था से प्राप्त होता है।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। (यजुर्वेद ४०, १)

अर्थ—इस गतिशील संसार में जो कुछ भी है ईश्वर उस सब में बसा हुआ है।

न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः। (यजुर्वेद ३२, ३)

अर्थ—उस परमात्मा की कोई आकृति या मूर्ति नहीं है। उसे नापा या तोला नहीं जा सकता। उस परमात्मा का नाम स्मरण अर्थात् उसकी आज्ञा का पालन करना अर्थात् धर्मयुक्त कर्मों का करना बड़ी कीर्ति देने वाला है।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुसा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा-हृदिस्थं मनसा च एनमेव विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

(श्वेताश्वतर उपनिषद्)

अर्थ—परमात्मा का कोई रूप (आकृति, वर्ण, स्वरूप) नहीं जिसे आंखों से देखा जा सके। उसे कोई भी आंखों से नहीं देखता। वह हृदय में स्थित है। जो उसे हृदय से तथा मन से जान लेते हैं वे आनन्द को प्राप्त करते हैं।

स पर्यगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्
अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम्।
कविः मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतः
अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ (यजुर्वेद ४०, ८)

अर्थ—वह परमात्मा सर्वत्र व्यापक है। वह शीघ्रकारी है। उसका कोई शरीर नहीं है। वह छिद्र रहित है तथा उसके टुकड़े नहीं हो सकते। वह नस नाड़ी आदि के बंधन से रहित है। अविद्या आदि दोष न होने से वह सदा पवित्र है। वह कभी भी पाप कर्म नहीं करता। वह सर्वज्ञ है। सब जीवों की मनोवृत्तियों को वह जानता है। वह दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला है। वह परमात्मा अनादि स्वरूप वाला है, उसको कोई बनाने वाला नहीं है, उसके माता पिता नहीं हैं। उसका गर्भवास, जन्म, मृत्यु आदि नहीं होते। वह परमात्मा सदा से प्रजा के लिये वेद के द्वारा सब पदार्थों का अच्छी तरह से उपदेश करता है।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढो ऽऽत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते तु अग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥ (कठोपनिषद्)

अर्थ–वह परमात्मा सब प्राणियों अप्राणियों में छिपा हुआ है। वह सामने नहीं है। सूक्ष्म दृष्टि वाले लोग अपनी तीव्र और सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा उसे जान लेते हैं।

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतः सु अरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि गृह्यते ऽसौ सत्येनैनं तपसायोऽ नुपश्यति॥ (श्वेताश्वतर उपनिषद्)

अर्थ–जैसे तिलों में तेल, दही में घी, झरनों में पानी और अरणी नाम की लकड़ी में आग रहती है। और तिलों को पीलने से, दही को बिलोने से, और अरणियों को रगड़ने से ये प्रकट होते हैं। वैसे ही जीवात्मा में परमात्मा रहता है और वह वहीं मिलता है। सत्य और तप से उसे जाना जा सकता है।

यथा ऊर्णनाभिः सृजते गृह्यते च यथा पृथिव्याम् ओषधयः संभवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथा अक्षरात् संभवति इह विश्वम्॥
(मुण्डकोपनिषद्)

अर्थ–जैसे मकड़ी अपने शरीर के अन्दर से जाले बनाती है और फिर उन्हें अपने अन्दर ही समेट लेती है, जैसे पृथिवी से औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, जैसे जीवित पुरुष के शरीर में बाल निकलते हैं उसी प्रकार ईश्वर के प्रकृति रूपी शरीर से यह संसार बन जाता है।

* * * *

३. ईश्वर की भक्ति

ईश्वर भक्ति, स्तुति, पूजा, जाप, नाम स्मरण, गुणगान, कीर्तन आदि जो भी हम करते हैं वह ईश्वर के लिये नहीं है। हमारे कुछ भी करने से ईश्वर को लाभ, हानि, सुख, दुःख नहीं होता और न ही वह प्रसन्न, अप्रसन्न होता है। हमारे किसी काम का भी ईश्वर के ऊपर कोई प्रभाव नहीं होता।

ईश्वर सारे संसार को खिलाता है। संसार के सभी पदार्थ उसके अंदर हैं, और वह सब पदार्थों में है। इसलिये ईश्वर को खिलाने वाली बात ठीक नहीं बनती। कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ ईश्वर विद्यमान नहीं है। वह सब कुछ देखता है, और सब कुछ सुनता है। यहां तक कि वह सभी के मनों की बात को भी जानता है क्योंकि वह मनों में भी उपस्थित है। इसलिये ईश्वर को सुनाने के लिये न ऊँची बांग देने की जरूरत है, न घंटी बजाने की और न ही लाउडस्पीकर लगाने की। ईश्वर सुगन्ध, दुर्गन्ध से परे है, इसलिये उसके लिये धूपबत्ती लगाने का कोई मतलब नहीं। ईश्वर की कोई शक्ल सूरत नहीं, इसलिये उसे कपड़े पहनाने, तिलक लगाने या साज श्रृंगार करने की कोई आवश्यकता नहीं।

हम जो कुछ भी करते हैं सब अपने लिए करते हैं। ईश्वर हमारे कामों के अनुसार हमें अच्छा या बुरा फल देता है। कुछ कामों का फल उसी समय मिल जाता है और कुछ कामों का फल बाद में उचित अवसर आने पर मिलता है। जो फल हमें बाद में मिलता है उसे हम किस्मत कह देते हैं।

ईश्वर भक्ति का अर्थ है ईश्वर के गुणों को याद करना तथा उन गुणों को अपने जीवन में अपनाना। ईश्वर न्यायकारी है, वह सदा पक्षपात रहित होकर न्याय ही करता है। वह किसी की भी सिफारिश नहीं मानता। वह अन्याय कभी नहीं करता। ईश्वर सत्यकर्त्ता है। वह सदा ठीक काम ही करता है, गलत काम कभी नहीं करता। ईश्वर ज्ञानवान् है। सारा सच्चा ज्ञान ईश्वर के पास है। वह किसी बात में भी अज्ञानी नहीं है। ईश्वर पवित्र है, अविद्या आदि दोष उसमें नहीं हैं। ईश्वर दयालु है, उसने दया करके हमारे उपभोग के लिये हजारों पदार्थ दे रखे हैं। इत्यादि। हमें भी न्यायकारी, सत्यकर्त्ता, ज्ञानवान्, पवित्र, दयालु बनना चाहिए। यदि हम ईश्वर की भक्ति तो करते हैं परन्तु उसके गुणों को नहीं अपनाते तो हमारा भक्ति करना बेकार है तथा वह स्थिति उस गधे के समान है जो अपनी पीठ पर लादकर धान को ढोता तो है पर वह उसे खा नहीं सकता।

* * * *

४. संध्या, प्रार्थना, उपासना

संध्या–पूर्वां संध्यां जपन् तिष्ठन् नैशम् एनः व्यपोहति।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम्॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–(दो संध्या काल हैं–प्रातः और सायं, जब दिन और रात मिलते हैं) मनुष्य प्रातःकाल संध्या में बैठकर रात के समय में आए मानसिक दोषों को दूर करे। और सायंकाल संध्या में बैठकर दिन में आए मानसिक दोषों को दूर करे। अर्थात् दोनों संध्या में बैठकर उससे पहले समय में आए मानसिक विकारों पर चिन्तन, मनन और पश्चात्ताप करके उन्हें आगे न आने देने का निश्चय करे।

प्रार्थना–कोई वस्तु परमात्मा से मांगने से पहले उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए उसके अनुसार प्रयत्न करना आवश्यक है। विद्यार्थी परमात्मा से प्रार्थना करे कि वह उसे परीक्षा में पास कर दे, तो विद्यार्थी का कर्त्तव्य है कि वह परीक्षा की तैयारी पूर्ण मेहनत से करे। हम ईश्वर से प्रार्थना करें कि वह हमें तीक्ष्ण बुद्धि दे तो उसके लिए हमें भी ऐसे यत्न करने चाहियें जिससे बुद्धि तीक्ष्ण हो-खान, पान, ब्रह्मचर्य का पालन, अच्छी-अच्छी पुस्तकों का पढ़ना आदि। यदि हम स्वयं प्रयत्न न करें और ईश्वर से मांगते रहें तो हमें कुछ न मिलेगा। जो परमेश्वर के सहारे आलसी बनकर

बैठे रहते हैं, उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता क्योंकि ईश्वर की पुरुषार्थ (मेहनत) करने की आज्ञा है। ईश्वर उसी की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करता है। जो बैठा हुआ गुड़, गुड़ कहता रहे, उसे गुड़ प्राप्त नहीं होता। जो उसके लिए प्रयास करता है उसे कभी न कभी गुड़ मिल ही जाता है।

उपासना–जब ईश्वर की उपासना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध स्थान पर जाकर आसन लगाकर आँखें बन्द करके बैठ जाए। सभी इन्द्रियों को बाहरी संसार से रोककर पहले प्राणायाम करे। फिर अपने मन को हृदय, नाभि या कण्ठ-किसी एक स्थान पर स्थिर करके अपने आत्मा और परमात्मा का चिन्तन कर परमात्मा में मग्न हो जाए। ऐसा करते रहने से आत्मा और अन्तःकरण सभी पवित्र हो जाते हैं तथा मनुष्य की केवल सत्याचरण में ही रुचि हो जाती है। आत्मा का बल इतना बढ़ जाता है कि पहाड़ के समान मुसीबत आने पर भी मनुष्य घबराता नहीं और सहन कर लेता है।

नोट :–अन्तःकरण की चार वृत्तियाँ हैं–मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। अन्तःकरण की सुख दुःख आदि के कारण को विचारने वाली वृत्ति का नाम मन, इन्द्रियों के द्वारा बाहरी वस्तुओं का ज्ञान निश्चय प्राप्त करने की वृत्ति का नाम बुद्धि, व्यापार आदि के सम्बन्ध में विचारने का नाम चित्त, है। अपनी सत्ता तथा अपने से संबंधित वस्तुओं को अपना जानता हुआ प्रकाश करता है इस वृत्ति का नाम अहंकार है।

* * * *

५. मूर्त्तिपूजा ईश्वर की पूजा नहीं है

सोना, चांदी, लोहा, लकड़ी पत्थर या मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसे पूजना, उस पर फल, फूल, मिठाई आदि चढ़ाना, उसके आगे नाचना, गाना, उससे भीख मांगना, उसके आगे प्रार्थना करना, घण्टी घड़ियाल बजाना, उसे कपड़े गहने पहनाना आदि क्रियाएं व्यर्थ हैं। वह जड़ मूर्त्ति ये सब नहीं जानती।

यह ईश्वर पूजा भी नहीं है। ईश्वर तो सर्वत्र व्यापक होने से फल, वस्त्र आदि में भी विद्यमान है। और ईश्वर की पूजा मनुष्य की तरह नहीं हो सकती। ईश्वर की कोई शक्ल सूरत नहीं है। इसलिए उसकी मूर्त्ति नहीं बन सकती।

ईश्वर के बनाए इस विचित्र ब्रह्माण्ड को देखकर उसके अद्भुत गुणों का मन में चिन्तन करना चाहिए। सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथिवी आदि सभी ईश्वर ने बनाए हैं। ऐसे महान् परमेश्वर की महत्ता का विचार करना चाहिये।

मूर्तिपूजा करने वालों ने सब व्यवस्था उ ट दी है। ईश्वर ने इन्हें बनाया, इन्होंने ईश्वर को घड़ दिया। ईश्वर सब जगह व्यापक है, इन्होंने उसे एक स्थान पर सीमित

कर दिया। ईश्वर आजाद है, इन्होंने उसे मन्दिर में कैद कर दिया। ईश्वर सबका रक्षक है, इन्होंने उसे अपनी रक्षा का भी मोहताज बना दिया। ईश्वर सबको खिलाता है, ये उसे ही खिलाने का ढोंग करते हैं।

मनुष्यों के सबसे अधिक नजदीक जो वस्तु है वह है ईश्वर क्योंकि वह हमारे हृदय में बसा हुआ है। इसलिए उसे बाहर ढूँढना व्यर्थ है।

हमने ईश्वर पूजा का मजाक बनाया। अतः आज सब जगह हमारा मजाक हो रहा है। सत्य, न्याय, परोपकार आदि शुभ कर्मों को हमने छोड़ दिया और निरर्थक मूर्तिपूजा में फंस गए। यह हमारा अत्यन्त दुर्भाग्य है।

आदि गुरु शंकराचार्य मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने 'परापूजा' नामक अपनी पुस्तक में बड़े तर्क पूर्ण ढंग से मूर्तिपूजा को गलत सिद्ध किया है। गुरु नानक देव, कबीर, दादू, समर्थ गुरु रामदास आदि सन्तों ने मूर्तिपूजा का जोरदार खण्डन किया है। वेद, शास्त्र, उपनिषद् मनुस्मृति आदि किसी भी वैदिक ग्रन्थ में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है। इस युग के महानतम वैदिक विद्वान् तथा समाज सुधारक महर्षि दयानन्द ने तो मूर्तिपूजा को आर्यों (हिन्दुओं) के पतन का सबसे बड़ा कारण बताया है।

तीर्थेषु पशु यज्ञेषु काष्ठे पाषाण-मृण्मये।
प्रतिमायां मनो येषां ते नरा मूढचेतसः॥

(आदि गुरु शंकराचार्य, 'परापूजा' में)

अर्थ—तीर्थों में, ऐसे यज्ञों में जिनमें पशु बलि दी जाती है और लकड़ी, पत्थर, मिट्टी की मूर्ति में जिनका मन है, वे मनुष्य मूढ़ मति वाले हैं।

स्वगृहे पायसं त्यक्त्वा भिक्षामृच्छति दुर्मतिः।
शिलामृत् दारु चित्रेषु देवता बुद्धि कल्पिता॥

(आदि गुरु शंकराचार्य, 'परापूजा' में)

अर्थ—अपने घर की खीर को छोड़कर मूर्ख मनुष्य भीख मांगता फिरता है। पत्थर, मिट्टी और लकड़ी में देवताओं की कल्पना करता है। अपने अन्दर परमात्मा घर में ख़ीर समान है तथा मूर्तिपूजा भीख समान है।

प्रकृति पूजा क्या है ? प्रकृति जड़ है और जड़ पदार्थ से ठीक उपयोग लेना ही उसकी सही पूजा है। आग को चाहे सौ साल तक हाथ जोड़ते रहो, पर उसमें हाथ डालने पर वह जला ही देगी। यह नहीं देखेगी कि यह मेरा पुजारी है।

जो व्यक्ति तैरना नहीं जानता यदि वह गंगा में कूद पड़े तो गंगा उसे डुबा देगी। वह यह नहीं देखेगी कि यह मेरा पुजारी है और मेरा नाम जपता है। दूसरी तरफ कोई कसाई पशुओं का वध करके आया हो और खून से भरा हो वह गंगा मैया नहीं कहता,

पर तैरना जानता है गंगा में घुस जाता है। गंगा उसका कुछ न बिगाड़ेगी, अपितु उसका शरीर शुद्ध करेगी तथा उसे तैराकी का आनन्द भी देगी।

* * * *

६. ईश्वर अवतार नहीं लेता

ईश्वर सब जगह व्यापक है, इसलिए वह एक स्थान पर कैसे सीमित हो सकता है। और भी, जो जन्मता है वह मरता भी है। ईश्वर न जन्म लेता है और न ही मरता है। शरीरधारी तो सुख, दुःख, भूख, प्यास, भय, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि में फंसता रहता है। परन्तु ईश्वर तो इन सब बातों से परे है। इसलिए ईश्वर शरीरधारी नहीं हो सकता।

प्रश्न–जो ईश्वर अवतार न लेवे तो रावण, कंस आदि का नाश कैसे हो सके?

उत्तर–पहले तो जो जन्मा है वह अवश्य मरेगा। इस कारण से रावण और कंस आदि ने भी मर ही जाना था। दूसरी बात–ईश्वर बिना शरीर धारण किए सारे ब्रह्माण्ड को बनाता है जिसमें सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथ्वी, पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष, वनस्पति आदि हैं। उसके सामने रावण और कंस तो चींटी के समान भी नहीं। परमात्मा सर्वव्यापक होने से उनके शरीरों में भी विद्यमान था; जब चाहे अन्दर से ही हृदय फेल करके मार सकता है।

श्री राम तथा श्री कृष्ण महान पुरुष थे। वे ईश्वर न थे और न ही ईश्वर के अवतार थे। वे ईश्वर भक्त थे। श्री राम तथा श्री कृष्ण भी अन्य पुरुषों की तरह ही अपने माता-पिता से पैदा हुए थे। उनके भी भाई थे, उनके भी मित्र और शत्रु थे। उन्होंने भी कार्य किए। उन्होंने भी सुख-दुःख झेले। वे विद्वान् थे, बलवान् थे, नीतिवान थे। वे सत्य और न्यायप्रिय थे, वे परोपकारी थे। उनके जीवन से कुछ अच्छी बातें लेकर हम अपने जीवन में अपना लें, यह उनकी पूजा होगी।

भगवान शब्द उसी प्रकार सम्मान सूचक है जिस प्रकार श्री और श्रीमान् हैं।

यहां वाल्मीकि रामायण तथा महाभारत से उदाहरण दिए जाते हैं जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि श्री राम तथा श्री कृष्ण मनुष्य थे, ईश्वर नहीं थे।

न मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।
शोकेन शोको हि परम्पराया मामेति भिन्दन् हृदयं मनश्च॥

(वाल्मीकि रामायण)

अर्थ–(सीता हरण के बाद श्री राम लक्ष्मण से कहते हैं) मैं समझता हूँ कि इस भूमण्डल पर मेरे समान दुष्कर्म करने वाला और कोई नहीं है क्योंकि शोक पर

शोक मेरे हृदय और मन को भेदने को प्राप्त हो रहे हैं।

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माणि असकृत्कृतानि।
तत्र अयमद्यापतितो विपाको दुखेन दुखं यदहं विशामि॥

(वाल्मीकि रामायण)

अर्थ–(श्री राम लक्ष्मण से) पूर्व जन्म में मैंने निश्चय ही घोर पाप किए हैं और बहुत वार किए हैं। उन्हीं पापों का फल आज मुझे प्राप्त हो रहा है और मेरे ऊपर दु:ख के ऊपर दु:ख आ रहे हैं।

वयं चैव महाराज जरासन्धभयात् तदा।
मथुरां परित्यज्य गता द्वारावतीं पुरीम्॥ (महाभारत, सभापर्व)

अर्थ–(श्री कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा) महाराज ! जरासंध के भय के कारण हम मथुरा छोड़कर द्वारिका चले गए।

न स्म मृत्युं वयं विद्म रात्रौ वा यदि वा दिवा।
न चापि कश्चिदमर युद्धेनानुशुश्रुम्॥ (महाभारत सभापर्व)

अर्थ–(श्री कृष्ण ने कहा) हम यह नहीं जानते कि मृत्यु कब आएगी, रात में आएगी या दिन में आएगी। हमने यह नहीं सुना कि युद्ध न करके कोई अमर हुआ हो।

* * * *

अध्याय २

जीव विषय

१. तीन अनादि पदार्थ

संसार में ईश्वर, जीव, प्रकृति-ये तीन पदार्थ सदा रहने वाले हैं। इनका कोई आरम्भ या अन्त नहीं है। ईश्वर के सम्बन्ध में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव विषय में कह आए हैं। वहां देख लेना चाहिए।

जीव--अनन्त हैं। हर मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि में अलग-अलग स्वतन्त्र जीव है। इसे ही आत्मा कहते हैं। यह जीवात्मा सदा रहने वाला है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। परन्तु कर्म करने के पश्चात् उसका यथायोग्य फल भोगना ईश्वर के अधीन है। एक ही आत्मा अपने कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य शरीर में तथा पशु, पक्षी आदि शरीरों में घूमता रहता है। आत्मा और शरीर के मिल जाने का नाम जन्म है। इनके अलग-अलग हो जाने का नाम मृत्यु।

प्रकृति--जिसे अंग्रेजी में मैटर कहते हैं। हमारा शरीर, मकान, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी आदि सभी प्रकृति से ही बने हैं। प्रकृति भी सदा रहने वाली वस्तु है। केवल अन्तर इतना है कि यह अपना रूप बदलती रहती है। जो आज लकड़ी है आग में जला देने से वह कार्बन, वाष्प और गैसों में बदल जाती है। इस प्रकार बदलने वाले सभी पदार्थ प्रकृति कहलाते हैं। यह प्रकृति कम या अधिक नहीं होती।

विशेष विचारणीय--आज का विज्ञान केवल प्रकृति को ही अनादि मानता है। परन्तु वेद इसके साथ दो और पदार्थों-ईश्वर और जीव को भी अनादि मानता है।

* * * *

२. आत्मा

न्यायदर्शन के अनुसार ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख--ये छः आत्मा के गुण हैं। इन्हीं गुणों के द्वारा आत्मा को जाना जाता है। जिनमें ये गुण हैं वे सजीव व जीवनधारी हैं।

आत्मा पवित्र है। वही शरीर को पवित्र करता है। बिना आत्मा के शरीर यानि

मुर्दा अपवित्र है। यह संसार भी इसलिए पवित्र है क्योंकि इसमें परमात्मा का वास है।

मनुष्य शरीर में आत्मा का निवास स्थान हृदय है। आत्मा हृदय में अणु रूप में स्थित है। परन्तु प्रभाव सारे शरीर में रहता है। जैसे दीपक एक स्थान पर होता है, परन्तु उसका प्रकाश रूप प्रभाव सारे कमरे में रहता है। आत्मा अति सूक्ष्म पदार्थ है। इतना सूक्ष्म कि-यन्त्रों की सहायता से भी उसे देखा नहीं जा सकता।

आत्मा, जल, वायु, भोजन या शरीर के छिद्रों द्वारा पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है। वीर्य सिंचन के समय माता के गर्भाशय में स्थापित होता है। उपनिषद्कार ने ऐसा ही लिखा है।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं,
कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे। (कठोपनिषद्)

अर्थ—यह आत्मा न उत्पन्न होता, न मरता है। न यह किसी कारण से उत्पन्न हुआ है, न पहले कभी हुआ था। यह अजन्मा है, नित्य है, निरन्तर है, पुरातन है। शरीर के मरने पर भी यह मरता नहीं है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ (गीता)

अर्थ—इस आत्मा को शस्त्र काट नहीं सकते, आग जला नहीं सकती। जल इसे गला नहीं सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकती।

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद्)

अर्थ—जीवात्मा न स्त्री है, न पुरुष, न नपुंसक है। जैसा जैसा शरीर पाता है, वैसा वैसा कहा जाता है।

* * * *

३. मन

मन आत्मा का साधन है। मन के द्वारा ही आत्मा की इच्छित क्रियाएं होती हैं। आत्मा का मन से, मन का इन्द्रियों से और इन्द्रियों का विषयों से (बाहरी संसार से) सम्पर्क होने पर ही आत्मा को ज्ञान तथा उसकी इच्छित क्रियाएं होती हैं। ज्ञान आत्मा का गुण है, मन का नहीं।

यस्मान् न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते। (यजुर्वेद)

अर्थात्–यह मन ऐसा है जिसके बिना कोई भी काम नहीं होता। यही कारण है कि मन के सम्पर्क न होने पर हम देखते हुए भी नहीं देखते तथा सुनते हुए भी नहीं सुनते।

मन आत्मा के पास हृदय में रहता है। वेद में इसे हृत्प्रतिष्ठम् (हृदय में निवास वाला) कहा गया है। मन जड़ है। इसलिये आत्मा से पृथक् होकर कोई भी क्रिया नहीं कर सकता। मन आत्मा के साथ जन्म-जन्मान्तर में रहता है। मृत्यु पर भी आत्मा के साथ दूसरे शरीर में जाता है। मुक्ति पर्यन्त वही मन आत्मा के साथ रहता है। मुक्ति के पश्चात् आत्मा को नया मन मिलता है। मन को अमृत इसीलिए कहा गया है कि यह शरीर के नाश होने पर नष्ट नहीं होता।

क्योंकि मन एक जड़ पदार्थ है। इसलिए मन पर भोजन का प्रभाव पड़ता है। जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन।

मन संस्कारों का कोष है। सभी संस्कार मन पर पड़ते हैं तथा वहीं जमा होते रहते हैं। जो संस्कार प्रबल होते हैं वे ही उभर कर सामने आते हैं। जो दुर्बल होते हैं वे दबे पड़े रहते हैं। जैसे किसी गढ्ढे में बहुत प्रकार के अनाज डाले जाएं–पहले गेहूँ, फिर चने, फिर चावल, उसके ऊपर जौ, उसके ऊपर मूंग, उड़द आदि। देखने वाले को वही दिखाई देगा जो सबसे ऊपर होगा, नीचे का कुछ भी दिखाई न देगा।

वैद्यक शास्त्र सुश्रुत के अनुसार–मन में सात्त्विक गुण प्रधान होने पर मनुष्य की स्थिति-अक्रूरता, अन्नादि वस्तुओं का ठीक ठीक वितरण, सुख, दुःख में एक सम, पवित्रता, सत्य, न्यायप्रियता, शान्त प्रकृति, ज्ञान और धैर्य।

रजोगुण प्रधान होने पर–घूमने का स्वभाव, अधीरता, अभिमान, असत्य भाषण, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, क्रोध, विषय सम्बन्धी इच्छा।

तामस मन के गुण–बुद्धि का उपयोग न करना, आलस्य–काम करने की इच्छा न होना, प्रमाद–अधिक नींद लेने की इच्छा, ज्ञान न होना, दुष्ट बुद्धि रहना।

महर्षि मनु लिखते हैं –

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हति।
तथा तथा शरीरं तत्तेनाधर्मेण मुच्यते॥

अर्थ–यदि कोई मनुष्य किसी दुष्कर्म से छुटकारा चाहता है तो मन से उस दुष्कर्म की खूब भर्त्सना (सराहना का उलट) किया करे। जैसे जैसे वह मन से दुष्कर्म की निन्दा करेगा वैसे वैसे उस दुष्कर्म से छूटता चला जाएगा।

* * * *

४. पुनर्जन्म

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार आत्मा अपने कर्मों के अनुसार शरीर बदलता रहता है। सभी शरीरों में मात्र मनुष्य ऐसा शरीर है जिसमें आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है। इस शरीर में जहां वह अपने पिछले किए कर्मों का फल भोगता है वहां नए कर्म भी करता है। इसीलिए मनुष्य शरीर को भोग योनि तथा कर्मयोनि कहा जाता है। अन्य सभी योनियां केवल मात्र भोग योनियां हैं क्योंकि उनमें जीव स्वतन्त्र होकर अथवा विचार कर कर्म नहीं कर सकता। वह या तो पराधीन होकर काम करता है या स्वभाव से करता है। मनुष्य से भिन्न सभी योनियों की ऐसा अवस्था है जैसी तलवार की। कोई व्यक्ति तलवार चलाकर के अच्छा या बुरा काम करता है तो उसका फल या दण्ड तलवार चलाने वाले को मिलता है, तलवार को नहीं।

अतः मनुष्य जन्म में किए हुए कर्मों के अनुसार ही आत्मा को शरीर मिलता है। यदि शुभ कर्म अधिक हों तो देव योनि विद्वान् का शरीर मिलता है। बुरे कर्म अधिक हों तो पशु, पक्षी, कीड़ा, पतंगा आदि का जन्म मिलता है। अच्छे और बुरे कर्म बराबर हों तो साधारण मनुष्य का जन्म मिलता है। यह जीव मन से शुभ अशुभ किए कर्म का फल मन से भोगता है। वाणी से किए का वाणी से, शरीर से किए का शरीर से भोगता है। महर्षि मनु ने वेदों के आधार पर ऐसा ही लिखा है। आत्मा मनुष्य या पशु पक्षी जिस भी योनि में जाता है उसी के अनुसार ढल जाता है–जैसे पानी में जो रंग डाला जाता है पानी उसी रंग का बन जाता है। पुनर्जन्म को गीता में ऐसा लिखा है –

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि,
अन्यानि संयाति नवानि देही।

अर्थ–जिस प्रकार मनुष्य फटे पुराने कपड़ों को उतार कर नये पहन लेता है ठीक उसी प्रकार यह आत्मा जीर्ण (निकम्मे) शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण कर लेता है।

प्रश्न–हमें पूर्व जन्म याद क्यों नहीं ?

उत्तर–जीव का ज्ञान दो प्रकार का होता है–एक स्वाभाविक और दूसरा नैमित्तिक। स्वाभाविक ज्ञान सदा रहता है और नैमित्तिक ज्ञान घटता बढ़ता रहता है। जीव को अपने अस्तित्व का जो ज्ञान है वह स्वाभाविक है। परन्तु आंख, कान आदि इन्द्रियों से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह नैमित्तिक ज्ञान है। नैमित्तिक ज्ञान तीन कारणों

से उत्पन्न होता है–देश, काल और वस्तु। इन तीनों का जैसा जैसा इन्द्रियों से सम्बन्ध होता है वैसा वैसा संस्कार मन पर पड़ता है। इनसे सम्बन्ध हटने पर इनका ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। पूर्व जन्म का देश, काल, शरीर का वियोग होने से उस समय का नैमित्तिक ज्ञान नहीं रहता।

* * * *

५. मनुष्य शरीर–एक घोड़ा गाड़ी

कठोपनिषद् में मनुष्य शरीर की तुलना एक घोड़ा गाड़ी से की गई है। मनुष्य के शरीर में दस इन्द्रियाँ–पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ–आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा और पाँच कर्मेन्द्रियाँ–हाथ, पांव, मुख, मल और मूत्र इन्द्रियां रथ को खींचने वाले दस घोड़े हैं। मन लगाम, बुद्धि सारथी (रथवान्) तथा आत्मा रथ का सवार है। आत्मा रूपी सवार तभी अपने लक्ष्य तक पहुँचेगा जब बुद्धि रूपी सारथी मन रूपी लगाम को अपने वश में रख के इन्द्रियां रूपी घोड़ों को सन्मार्ग पर चलाएगा। घोड़े अगर सारथी के वश में नहीं हैं तो वे इधर उधर के आकर्षणों में उलझकर मार्ग को छोड़ बैठेंगे। यही अवस्था इन्द्रियों की है। ऐसी अवस्था का दुःख रूपी दुष्परिणाम भोगना पड़ता है आत्मा को।

इस गाड़ी को किराए की गाड़ी बताया गया है जिसे वायु, जल और भोजन के रूप में निरन्तर किराया देना पड़ता है।

मनुष्य शरीर का उद्देश्य है सुख प्राप्ति और सुख मिलता है परोपकार आदि शुभ कर्म करने से। परोपकार करना ही सन्मार्ग पर चलना है। असत्य, अन्याय आदि दुष्ट कर्मों में पड़ जाना ही संसार में उलझना है।

गीता में कहा है–इन्द्रियों की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा बुद्धि अधिक श्रेष्ठ है, बुद्धि की अपेक्षा आत्मा और अधिक श्रेष्ठ है।

* * * *

अध्याय ३

धर्म विषय

१. धर्म और अधर्म

ऐसे मौलिक सिद्धान्त जो मनुष्य की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के आधार हों धर्म कहलाते हैं।

सत्य यह धर्म, असत्य यह अधर्म।
न्याय यह धर्म, अन्याय यह अधर्म।
निष्पक्ष यह धर्म, पक्षपात यह अधर्म।

अहिंसा परमो धर्मः (महाभारत)

अर्थात् वैर भाव का त्याग सबसे बड़ा धर्म है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचम् इन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ (मनुस्मृति)

इस श्लोक के द्वारा महर्षि मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं।

१. **धृति**--सुख, दु:ख, हानि, लाभ, मान, अपमान में धैर्य रखना।

२. **क्षमा**—सहनशीलता। बलवान् होकर निर्बल को कष्ट दिया और निर्बल ने सह लिया, यह क्षमा नहीं है अपितु असमर्थता है। शरीर में सामर्थ्य होने पर भी बुराई का बदला न लेना क्षमा है।

३. **दम**—मन को बुरे चिन्तन से हटाकर अच्छे कामों में लगाना।

४. **अस्तेय**—अन्याय से धन आदि ग्रहण न करना तथा बिना आज्ञा दूसरे का पदार्थ न लेना ही अस्तेय है। अर्थात् चोरी, डाका, रिश्वतखोरी, चोर बाजारी आदि का त्याग करना।

५. **शौच**—शरीर के अन्दर की तथा बाहर की शुद्धि रखना। बाहर की शरीर आदि की शुद्धि से रोग उत्पन्न नहीं होते जिससे मानसिक प्रसन्नता बनी रहती है। बाहर की शुद्धि का प्रयोजन मानसिक प्रसन्नता ही है। अन्दर की शुद्धि राग, द्वेष आदि के त्याग से होती है। शुद्ध सात्त्विक भोजन तथा वस्त्र, स्थान मार्ग आदि की शुद्धि भी आवश्यक है।

६. **इन्द्रियनिग्रह**–हाथ, पांव, मुख आदि इन्द्रियों को अच्छे कामों में लगाना।

७. **धी**–बुद्धि बढ़ाना। मांस, शराब, तम्बाकू आदि के त्याग से, ब्रह्मचर्य यानि वीर्य रक्षा से, अच्छी पुस्तकों के अध्ययन से, उत्तम औषधियों के सेवन से, दुष्टों के संग व आलस्य त्याग आदि से बुद्धि बल बढ़ाना।

८. **विद्या**–तिनके से लेकर ईश्वर तक सभी पदार्थों का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना तथा उनसे यथार्थ उपकार लेना।

९. **सत्य**–जैसा अपने ज्ञान में हो वैसा ही मानना, वैसा ही कहना और वैसा ही करना सत्य कहलाता है।

१०. **अक्रोध**–इच्छा के विघात से जो क्रोध उत्पन्न होता है उसका त्याग करना चाहिये।

आचारः परमो धर्मः। (मनुस्मृति)

शुभ गुणों के आचरण का नाम ही धर्म है।

न लिङ्गम् धर्मकारणम्। (मनुस्मृति।

बाहरी चिह्न किसी को धर्मात्मा नहीं बनाते। कपड़े कैसे पहनें या बाल कैसे रखें आदि बातें देश, काल, ऋतु और रुचि पर आधारित हैं। काला या पीला चोगा पहनना, कण्ठी माला धारण करना, तिलक लगाना, जटा बढ़ाना आदि बातों का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।

धर्म 'धृ' धातु से बना है। धृ का अर्थ धारण करना है तथा धर्म का अर्थ धारण करने योग्य अर्थात् अपनाने योग्य गुण।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार तथा अपनी आत्मा की आवाज ये चार धर्म के लक्षण हैं। अर्थात् इन्हीं से धर्म-अधर्म का निश्चय होता है।

मानवता अर्थात् मानवीय गुणों का अपनाना ही वास्तव में सब मनुष्यों का धर्म है। वेद कहता है 'मनुर्भव'। ऐ मनुष्य तू वास्तव में मनुष्य बन।

''जो पक्षपात रहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का सर्वथा परित्याग रूप आचार है उसी का नाम धर्म और इसके विपरीत जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण, सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहण रूप कर्म है उसी को अधर्म कहते हैं।''

–महर्षि दयानन्द सरस्वती

अधर्म दस प्रकार के हैं–

मानसिक अधर्म तीन प्रकार के हैं :–

१. दूसरों के पदार्थों को चुराने की इच्छा करना।

२. लोगों का बुरा चिन्तन करना, मन में ईर्ष्या द्वेष करना।

३. गलत काम करने का निश्चय करना।

वाचिक अधर्म चार हैं :--

१. कठोर बोलना।

२. झूठ बोलना।

३. चुगली करना।

४. जानबूझकर बात को उड़ाना।

शारीरिक अधर्म तीन हैं :–

१. चोरी करना।

२. हिंसा करना।

३. रण्डीबाजी, व्यभिचार आदि करना।

* * * *

२. हवन या अग्निहोत्र (यज्ञ)

यज्ञ मे जल और वायु की शुद्धि होती है जिससे रोगों का निवारण होता है। मनुष्य को स्वस्थ और सुखी रहने के लिए जल और वायु की स्वच्छता परम आवश्यक है। कहीं दूर जाना हो तो सबसे पहले वहां का जलवायु ही पूछा जाता है, क्योंकि यदि वहां का जलवायु (जल और वायु) ठीक है तो वहां पर स्वस्थ रह सकेंगे। आज संसार में जल और वायु की अशुद्धि एक बड़ी भारी समस्या बनी हुई है। वैदिक संस्कृति में यज्ञ (हवन) इस समस्या का सर्वोत्तम समाधान है। पुराने समय में ऋषि, मुनि, राजे, महाराजे तथा प्रजा प्रतिदिन प्रातः सायं यज्ञ किया करते थे।

अग्नि में भेदन शक्ति–अग्नि में पड़े हुए घी आदि पदार्थ छिन्न-भिन्न तथा हल्के होकर हवा में मिलकर दूर-दूर फैल जाते हैं और हवा को शुद्ध करते हैं। जो भाप आदि जल का भाग होता है वह भी हवा के सहारे ऊपर उठकर बादल बन जाता है। फिर वर्षा के रूप में भूमि पर वापिस आता है। वर्षा के इस शुद्ध जल में फल, सब्जियां, वनस्पतियां आदि भी रोगनाशक होती हैं। घर में केसर, कस्तूरी आदि रखने से तथा चन्दन आदि घिस के लगाने से उसका एक अंश भी लाभ नहीं होता।

चार प्रकार के पदार्थों से होम करना चाहिए। (एक) सुगन्ध वाले-केसर, कस्तूरी, अगर, तगर, सफेद चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि। (दूसरे) पुष्टिकारक-घी, फल, कन्द, चावल, गेहूं, उड़द आदि (तीसरे) मीठे-शक्कर, शहद, छुआरे, दाख आदि। (चौथे) रोगनाशक-सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषधियाँ।

समिधा (लकड़ी—चन्दन, पलास (ढाक), पीपल, बड़, गूलर, आम आदि की

हो जिनके जलने से दुर्गन्ध और धुआं अधिक न हो।

यज्ञकुण्ड का प्रयोजन–जैसे तापने (सेंकने) के लिए अंगीठियां आदि बनाई जाती हैं ताकि आग इधर उधर न बिखरे तथा थोड़े ईंधन से ही अधिक सेक हो सके इसी कारण से हवनकुण्ड बनाया जाता है ताकि पदार्थ शीघ्र ही भिन्न-भिन्न परमाणु होकर वायु के साथ आकाश में फैल जाएं।

वेदी बनाने का प्रयोजन है कि वायु अधिक न लगे तथा उड़ता हुआ पक्षी या उसकी बीठ इत्यादि न गिरे।

यज्ञ करते समय पहनने के वस्त्र -गर्मी में रेशमी और सर्दी में ऊनी वस्त्र पहनकर यज्ञ करने का शास्त्रों में विधान है। इसलिये कि रेशम और ऊन के वस्त्र को आग लग जाने पर थोड़े स्थान पर ही लगकर बुझ जाती है। गर्मी में रेशम के वस्त्र पहनने से पसीना भी कम आता है।

होम न करने से मनुष्य को पाप लगता है। मनुष्य के शरीर से दुर्गन्ध निकलकर जितना जल वायु अशुद्ध करके रोग उत्पत्ति करता है तथा प्राणियों को दुःख देता है। उतना ही पाप लगता है। केवल अपने शरीर से ही नहीं अपितु अपने सुख के लिए रखे पशु इत्यादि से भी जो दुर्गन्ध उत्पन्न होता है उसके पाप का भागी मनुष्य ही होता है। इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना या अधिक सुगन्ध जल और वायु में फैलाना चाहिये।

* * * *

१३. हिंसा तथा अहिंसा

योगदर्शन के भाष्य (व्याख्या) में महर्षि वेदव्यास ने अहिंसा शब्द का अर्थ किया है–सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः अहिंसा ज्ञेया। अर्थात् सब प्रकार से सदा सब प्राणियों से वैर-भाव का त्याग अहिंसा कहलाती है। इसलिये किसी भी प्राणी पशु-पक्षी या मनुष्य को पीड़ा देना या न देना ही हिंसा या अहिंसा नहीं होती अपितु उसके पीछे कारण और भावना ही उस कर्म को हिंसा या अहिंसा बनाते हैं, वैर भाव से या बिना कारण ही किसी प्राणी को कष्ट देना या जान से मार देना हिंसा है। युद्ध में शत्रु के प्राण लेना हिंसा नहीं। जंगली दुष्ट पशु जो खेती को खराब करें या जंगली जानवर शेर, चीता आदि जो मनुष्यों को हानि पहुँचाएं उन्हें मारना हिंसा नहीं। खाने के लिए पशुओं को मारना हिंसा और पाप है।

श्री राम ने ताड़का, बाली, रावण, आदि दुष्टों का संहार किया। श्री कृष्ण ने कंस, जरासंध, शिशुपाल आदि को मारा। ऐसा करके इन्होंने लाखों और करोड़ों लोगों

को उनके अत्याचारों से छुटकारा दिलाया। यही सच्ची वैदिक अहिंसा है। राजा का धर्म आततायी, पापी, दुराचारी को दण्ड दे करके सज्जनों की रक्षा करना है। इसी धर्म का श्री राम तथा श्री कृष्ण ने पालन किया था।

निस्संदेह वेदों का अनर्थ करके यज्ञ के लिए मूक पशुओं का वध करना रूपी क्रूर कर्म देखकर गौतम बुद्ध ने अहिंसा का संदेश दिया था। परन्तु उनकी अहिंसा भी गलत थी। गौतम बुद्ध तथा वर्धमान महावीर की गलत अहिंसा का दुष्परिणाम यह हुआ कि करोड़ों बहादुर नौजवान, केवल अहिंसा का आश्रय लेकर बौद्ध भिक्षुक और जैन श्रावक बनकर कायर, डरपोक, और नपुंसक बन गए। दोनों महानुभावों ने युद्ध का घोर विरोध किया। उनका कहना था कि अपनी ही अन्तरात्मा के साथ युद्ध करो, बाहर का युद्ध नहीं। इसी कारण से देश लम्बे समय तक गुलाम रहा।

शान्ति के नाम पर आततायी (हमलावर) के पांव तले अपने राष्ट्र को रौंदवा देना कायरता, पाप, हिंसा और अधर्म है। आततायी के दाँत खट्टे करना ही अहिंसा तथा वेदोक्त धर्म है। हमेशा शक्ति से ही शान्ति खरीदी जा सकती है, अशक्त और गलत अहिंसावादी बनकर नहीं। संसार में शक्ति की ही पूजा होती है। महाराणा प्रताप, शिवाजी, बन्दा वैरागी, झांसी की रानी की पूजा इसीलिए होती है कि उन्होंने आततायी शत्रुओं का वीरता से दमन किया था। उन भिक्षुओं और श्रावकों की पूजा नहीं होती जिन्होंने अहिंसा के नाम पर विदेशियों को भारत भू को रौंदने से नहीं रोका। उन पण्डों की भी पूजा नहीं होती जो हमलावर महमूद गजनवी से न स्वयं लड़े और न सैनिकों को लड़ने दिया और मान बैठे कि सोमनाथ जी यानि मूर्ति स्वयं म्लेच्छों को मार भगाएगी।

* * * *

१४. मनुष्य कौन
(महर्षि दयानन्द के शब्दों में)

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और लाभ हानि को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा (न्यायकारी) निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं (सदाचारियों) का चाहे वे अनाथ, निर्बल और गुण रहित (विद्या रहित) क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी (दुराचारी) चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् (विद्वान्) भी हो तथा उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहां तक हो सके वहां तक अन्यायकारियों के

बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सदा किया करे। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दु:ख प्राप्त हो चाहे प्राण भी चले जाएं परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

जितने मनुष्य से भिन्न जातिस्थ प्राणी हैं उनमें दो प्रकार का स्वभाव-बलवान् से डरना, निर्बलों को डराना और पीड़ा करना अर्थात् दूसरों का प्राण तक निकाल के अपना मतलब साध लेना देखने में आता है। जो मनुष्य ऐसा ही स्वभाव रखता है उसको भी इन्हीं जातियों में गिनना उचित है। परन्तु जो निर्बलों पर दया, उनका उपकार और निर्बलों पर पीड़ा देने वाले अधर्मी बलवानों से किञ्चित्मात्र भी भय, शंका न करके इनको पर पीड़ा से हटा के निर्बलों की रक्षा, तन, मन और धन से सदा सहायता करना, वही मनुष्य जाति का निज गुण है। (व्यवहारभानु)

* * * *

१५. मांस मनुष्य का भोजन नहीं है

किसी भी पशु, पक्षी का मांस या मछली, अण्डा आदि मनुष्य का भोजन नहीं है। मांस जहां मनुष्य शरीर के लिए हानिकारक है वहां मन, बुद्धि और आत्मा के लिए भी जहर है। वैदिक साहित्य में मांस खाने की पूरे तौर पर मनाही की गई है—वैद्यक शास्त्र में भी तथा धर्म शास्त्र में भी।

यो बन्धनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते॥ १॥

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणीवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांस विवर्जयेत्॥ २॥

समुत्पत्तिं च मांसस्य वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत सर्वमांसस्य भक्षणात्॥ ३॥

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते॥ ४॥

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातका:॥ ५॥ (मनुस्मृति)

अर्थ—जो प्राणियों को बन्धन में डालने, उनका वध करने और उनको पीड़ा पहुँचाने की इच्छा नहीं करता, वह सब प्राणियों का हितैषी बहुत अधिक सुख को

प्राप्त करता है।। १।।

प्राणियों की हिंसा किए बिना कभी मांस प्राप्त नहीं होता। जीवों की हत्या करना सुखदायक नहीं है। इस कारण मांस नहीं खाना चाहिये।। २।।

मांस की उत्पत्ति प्राणियों की हत्या और बन्धन के कष्टों को देखकर सब प्रकार के मांस भक्षण से दूर रहना चाहिये।। ३।।

जो व्यक्ति अपने सुख की इच्छा से अहिंसक निर्दोष प्राणियों की हत्या करता है वह जीते हुए और मर कर भी सुख को प्राप्त नहीं करता।। ४।।

पशुओं को मारने की आज्ञा देने वाला, मांस काटने वाला, पशुओं को मारने वाला, पशुओं को मारने के लिए मोल लेने और बेचने वाला, मांस पकाने वाला, मांस परोसने वाला और मांस खाने वाला--ये सब हत्यारे और पापी हैं।। ५।।

वेद में पशुओं को पालने का तथा उनकी रक्षा करने का अनेक स्थानों पर आदेश है।

अविर्मा हिंसीः गां मा हिंसीः एकशफंमा हिंसीः। (यजुर्वेद)

अर्थ–ऐ मनुष्य ! तू भेड़, गाय, एक खुर वाले घोड़े आदि पशुओं को मत मार।

प्रजां मे पाहि शंस्य पशून् मे पाहि। (यजुर्वेद)

अर्थ–हे जगदीश्वर ! आप मेरी प्रजा और पशुओं की रक्षा कीजिए।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा।। (अथर्ववेद)

अर्थ–हे दुष्ट ! यदि तू हमारे गाय, घोड़ा आदि पशुओं की या पुरुषों की हत्या करेगा, तो हम तुझे सीसे की गोली से बींध देंगे ताकि तू इन्हें फिर न मार सके।'

जीवितुं यः स्वयं च इच्छेत्कथं स अन्यं प्रघातयेत्।
यद्यदात्मनि चेच्छेत् तत्परस्यापि चिन्तयेत्।।

(महाभारत, शान्तिपर्व २५६-२२)

अर्थ–जो स्वयं जीने की इच्छा रखता है वह दूसरों को कैसे मारता है। प्राणी जैसा अपने लिए चाहता है वैसा ही दूसरों के लिए भी चाहे।

मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। (ऋग्वेद १-११४-८)

अर्थ--हमारी गौओं और हमारे घोड़ों को मत मार।

ये आमं मांसं अदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवाः तान् इतः नाशयामसि।। (अथर्ववेद)

अर्थ–जो लोग कच्चा मांस खाते हैं, जो मनुष्य का मांस खाते हैं तथा जो गर्भों अर्थात् अण्डों को खा जाते हैं, उन लोगों का समूल नाश कर दिया जाना चाहिये।

वेदों में खाने पीने के सम्बन्ध में गेहूँ, जौ, चावल आदि अनाज तथा फल, सब्जियां, दूध, घी आदि का ही वर्णन है, मांस का कहीं भी नहीं।

जो रत्त लगे कापड़े, जामा होई पलीत।
जो रत्त पीवहिं माणसा, तिन किऊँ निरमल चीत।।

(माझ की बार, मुहल्ला १-१-६)

कबीर जी कहते हैं :-

पीड़ सभन की एक सी मूर्ख जाने नाहीं।
अपना गला कटाए के, बहिष्त बसे क्यों नाहीं।।
कबीरा ! सोई पीर है जो जाने पर पीड़।
जो पर पीड़ न जान्हीं, सो काफिर बे पीर।।

मांस क्रूरता से प्राप्त होता है। इसलिए मांसाहारी मनुष्य क्रूर बन जाता है। उसमें दया आदि उत्तम गुण नहीं रहते। किन्तु स्वार्थवश होकर दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन सिद्ध करने में ही लगा रहता है। जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। मनुष्य जाति में हिंसा, क्रूरता तथा निर्दयता आदि के आ जाने से सब मनुष्यों तथा प्राणियों के लिए सुख खत्म हो जाता है।

मांस में यूरिक एसिड आदि कई प्रकार के विष तथा रोगकारक अंश पाए जाते हैं। शाकाहार में कोई रोगाणु नहीं रहते, अपितु रोग नाशक होते हैं। मांस आहार उत्तेजना कारक है। मांस खाने से अन्य बुराईयां भी आ जाती हैं।

एक बार टहलते हुए राजा भोज की दृष्टि एक भिखारी पर पड़ी जो मांस की दुकान से मांस खरीद रहा था। राजा भोज ने भिखारी से पूछा–ऐ भिखारी ! क्या तुम मांस खाते हो ? भिखारी ने उत्तर दिया–शराब के बिना मांस का क्या मजा है।

राजा–अच्छा तो तुम्हें शराब भी प्रिय है ?

भिखारी–शराब और मांस वेश्याओं के साथ बैठकर पीता खाता हूँ, अकेला नहीं।

राजा–वेश्याओं का संग तो धन के बिना नहीं होता, तुम्हारे पास धन कहां से आता है ?

भिखारी–मैं चोरी करके तथा जुआ खेलकर वेश्याओं के लिए धन संग्रह करता हूँ।

राजा ने आश्चर्य से कहा–तुम चोरी करते हो और जुआ भी खेलते हो। भिखारी की दयनीय दशा पर शोक प्रकट करते हुए राजा ने आगे कहा भ्रष्ट व्यक्ति का इससे अधिक और क्या पतन हो सकता है।

मांस भक्षण पर महर्षि दयानन्द के विचार–वेदों में कहीं मांस [illegible] नहीं

लिखा। शुभ गुण युक्त सुखकारक पशुओं के गले छुरी से काटकर जो अपने पेट भर सब संसार की हानि करते हैं क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघाती अनुपकारी दुःख देने वाले और पापी जन होंगे ?

ईश्वर सब प्राणियों का पिता है और सब प्राणी उसके पुत्र हैं ऐसा भाव दिखला कर महर्षि लिखते हैं–भला कोई मनुष्य एक लड़के को मरवाए और दूसरे लड़के को उसका मांस खिलावे ऐसा कभी हो सकता है ? हे मांसाहारियो ! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे या नहीं ?

महर्षि दयानन्द की बेजवान पशुओं की ओर से मनुष्यों के प्रति अपील–हे धार्मिक सज्जन लोगो ! आप हम पशुओं की रक्षा तन, मन और धन से क्यों नहीं करते? हाय ! बड़े शोक की बात है कि जब हिंसक लोग गाय, बकरे, पशु और मुर्गा आदि पक्षियों को मारने के लिए ले जाते हैं तब वे अनाथ तुम हम को देख के राजा और प्रजा पर बड़ा शोक प्रकाशित करते हैं कि देखो हम को बिना अपराध बुरी तरह से मारते हो और हम रक्षा करने तथा मारने वालों को भी दूध आदि अमृत पदार्थ देने के लिए उपस्थित रहना चाहते हैं, और मारे जाना नहीं चाहते। देखो, हमारा सर्वस्व परोपकार के लिए है और हम इसलिए पुकारते हैं कि हम को आप लोग बचावें। हम तुम्हारी भाषा में अपना दुःख नहीं समझा सकते और आप लोग हमारी भाषा नहीं जानते। नहीं तो क्या हम में से किसी को कोई मार सकता ? हम भी आप लोगों की तरह अपने मारने वाले को न्याय व्यवस्था से फांसी पर न चढ़वा देते ? हम इस समय अतीव कष्ट में हैं क्योंकि कोई भी हमारे बचाने में उद्यत नहीं होता और जो कोई होता है तो उससे मांसाहारी द्वेष करते हैं।

अश्वमेध, गोमेध और नरमेध का अर्थ महर्षि दयानन्द के शब्दों में–राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्या आदि दान देने हारा यजमान और अग्नि में घी आदि का होम करना अश्वमेध, अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना गोमेध, जब मनुष्य मर जाए उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है।

विदेशी विद्वानों के मांस के विषय में विचार

जार्ज बर्नड शा की एक कविता का भाव कुछ इस प्रकार है–मांस खाने वाले चलती फिरती कबरें हैं जिनमें मरे हुए जानवरों की लाशें दफन की गई हैं।

शेख अबुलफजल ने 'आइने अकबरी' के **प्रथम** भाग में लिखा है–मांस कोई पदार्थ नहीं है। यह वृक्ष की टहनियों पर नहीं लगता। यह जमीन के पेट में से भी नहीं निकलता। यह तो पशु, पक्षियों की लाशों से प्राप्त होता है।

रूस के सुप्रसिद्ध लेखक तथा विचारक टालस्टाय को एक बूचड़खाने के **समीप से गुजरना पड़ा। उन्होंने जो भयानक दृश्य देखा उस का वर्णन उन्हीं के शब्दों**

में-बाहर से आने वाले पशु वधशाला में प्रवेश करने से बहुत घबराते थे। कारण यह कि बूचड़खाने के प्रवेश द्वार पर ही काटे गए पशुओं के खून की दुर्गन्ध से वे अधीर हो जाते थे। भीतर कट रहे पशुओं का आर्त्तनाद उन्हें व्याकुल कर देता था। उनकी पूंछों को बहुत बुरी तरह से मरोड़कर उन्हें अन्दर धकेला जाता था। पशु बाहर भागने के लिए यत्न करते थे। इसी दौड़ धूप में उनके शरीरों से रक्तपात होने लगता था। आखिर मारे जाते थे। इस खूनी दृश्य को देखकर दूसरे पशु भी भयभीत होकर कांपने लगते थे। जैसी निर्दयता से अत्याचार, कष्टदायक व्यवहार इन मूक प्राणियों के साथ यहां होता है उसका उदाहरण और कहीं नहीं मिलता।

डाक्टर जोसिसा फील्ड लिखते हैं-"भूलिये मत ! प्रत्येक जीवित प्राणी जीवन के आनन्द और मरने के भय से परिचित है। वह आप की भांति सुख दु:ख का अनुभव करता है।"

पश्चिमी देशों के मांसाहारियों को अब एक नई बीमारी का पता चला है जिसका नाम है 'मैड काऊ डिजीज'। वे कहते हैं कि जब गाय को मारने लगते हैं तब भय के कारण गाय का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है और उस बिगाड़ का प्रभाव उसका मांस खाने वाले मनुष्यों पर भी पड़ता है। ऐसी ही कुस्थिति अन्य पशुओं को मारने तथा उन्हें खाने पर क्यों नहीं होती होगी।

* * * *

१६. शराब और जुआ

शराब–

कालीदास से–एक गणिका सिर पर शराब का करवा रख कर चल रही थी। उससे किसी ने पूछा कि तुम इस करवे में क्या लिये जा रही हो ? गणिका उत्तर देती है–

मदः प्रमादः कलहश्च निद्रा बुद्धिर्क्षयो धर्मविपर्ययश्च।
सुखस्य कन्था दुखस्य पन्था अष्टौ अनर्था वसन्ति इह कर्के॥

अर्थ–इस सुरा पात्र में नशा, आलस्य लड़ाई झगड़ा, नींद, बुद्धि का नाश, अधर्माचरण, सुख के चीथड़े और दु:ख का मार्ग–ये आठ अनर्थ हैं।

न स स्वो दक्षो वरुण धुतिः।
सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः॥ (ऋग्वेद ७-८६-६)

अर्थ–मनुष्य का केवल अपना मन ही उसे पथ भ्रष्ट नहीं करता। अपितु सुरापान करने (शराब पीने), क्रोध करने, जुआ खेलने तथा असावधान रहने से भी मनुष्य पाप

के गढ्ढे में गिर जाता है।

वैदिक सोमरस शराब नहीं था।

ओषधिः सोमः सुनोतेः यदेनमभिषुणवन्ति। (निरुक्त ११-२-२)

अर्थ–सोम एक औषधि होती है। सोम शब्द निचोड़ने अर्थवाली षुञ् धातु से बनता है। औषधि को सोम इस कारण से कहते हैं कि क्योंकि उस औषधि को कूट, पीस कर, निचोड़कर रस निकाला जाता है।

यह रस बहुत स्वादु, मधुर और तीव्र होता है। इसके पीने से मन, मस्तिष्क और शरीर में वीरता का संचार हो जाता है।

शराब, मांस, अफीम, तम्बाकू, भांग, चरस आदि जितने भी नशे वाले पदार्थ हैं, वे सब शरीर और बुद्धि का नाश करने वाले हैं। अतः उनका निषेध है। नशे वाले पदार्थों के प्रयोग से अपराध वृत्ति बढ़ती है। अपराध वृत्ति बढ़ने से अपराध बढ़ते हैं। इसलिये भी सभी नशे वाले पदार्थों के प्रयोग की वैदिक साहित्य में मनाही है।

जुआ–

जाया तप्यते कितवस्य हीना। (ऋग्वेद)

अर्थ–जुएबाज की स्त्री दीन हीन होकर दुःख पाती रहती है।

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्। (ऋग्वेद)

अर्थ–जुआरी की सास उसकी निन्दा करती है। स्त्री रोकती है। और वह जुआरी याचना करने पर भी किसी सहायक को नहीं पाता।

अक्षैर्मा दीव्यः। (ऋग्वेद) जुआ मत खेल।

ऋग्वेद में एक पूरा सूक्त (१०/३४) जुए की बुराईयां बताने के लिए है। उसके नवम मन्त्र में जुए के पासों को अंगारों के समान बताया गया है जो ऊपर से ठण्डे दीखने पर भी हृदय को जलाने वाले होते हैं।

प्रकाशम् एतत् तास्कर्यम् यद् देवनसमाह्वयौ।
तयोः नित्यं प्रतिघाते नृपतिः यत्नवान् भवेत्॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–ये जो जुआ (जड़ वस्तुओं से बाजी लगाकर खेलने वाला) और चेतन प्राणियों को दाव पर लगाकर खेलने वाला समाह्वय हैं, ये सामने होने वाली चोरी हैं। राजा इनको समाप्त करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहे।

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं महत्।
तस्मात् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थम् अपि बुद्धिमान्॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–यह जुआ अब से पहले कल्प में महान् शत्रुता पैदा करने वाला देखा गया है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य हंसी मजाक में भी जुआ न खेले।

* * * *

१७. तप, तीर्थ, व्रत

तप–

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः। (तैत्तिरीयोपनिषद्)

अर्थात् यथार्थ शुद्धभाव रखना, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को बुराईयों की ओर न जाने देना, शरीर, इन्द्रियां और मन से शुभ कामों का करना, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कार्यों का नाम तप है। धूनी लगाके सेकने का नाम तप नहीं है।

बहुत से लोग तप के नाम पर अकारण ही अपने शरीर को अनेक कष्ट देते हैं। गर्म चिमटे से अपने शरीर को दागते हैं। महीनों खड़े रहते हैं जिससे उनकी टांगों में खून उतर आता है और सूज कर बहुत कष्ट देती हैं। शीतकाल में सिर पर सैकड़ों घड़े ठण्डे पानी के डलवाते हैं। सिर के बालों को कैंची से काटने की बजाय हाथ से नोचते हैं इत्यादि। ये सब क्रियाएं न तप हैं, न धर्म हैं। अपितु पाप और हिंसा हैं, बहकावा और छलावा हैं।

तीर्थ–वेद आदि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, माता, पिता, आचार्य, अतिथि की सेवा करना, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, जितेन्द्रियता, सुशीलता, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभ गुण और कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं।

"जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है।

जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबोकर मारने वाले हैं। इसलिये वे तीर्थ नहीं हैं। नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे नदी को तरते हैं। जल में तैरने की विद्या भी तीर्थ हो सकती है।

व्रत–

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ (यजुर्वेद)

अर्थ–हे सत्य धर्म के उपदेशक, व्रतों के पालक प्रभु ! **मैं असत्य को छोड़कर** सत्य को ग्रहण करने का **व्रत** लेता **हूँ। आप मुझे ऐसा सामर्थ्य दो कि मेरा यह व्रत सिद्ध हो अर्थात् मैं अपने व्रत पर पूरा उतरूँ।**

यही व्रत करने का वैदिक स्वरूप है। किसी सांसारिक मनोकामना की पूर्ति के लिए विशेष दिन अन्न जल आदि के त्याग का नाम व्रत नहीं है। पति या पत्नी की प्रसन्नता के लिए उससे सद्व्यवहार करने का संकल्प लेना तथा उसे निभाना ही व्रत है। रोगग्रस्त का उचित उपचार (इलाज) करवाना ही व्रत है। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि के त्याग का संकल्प लेकर उसका पालन करना व्रत कहलाता है।

* * * *

१८. दान किसे दें

सुपात्र को दान देना एक शुभ कर्म है, परन्तु कुपात्र को देना अशुभ।

सुपात्र कौन—गरीब, रोगी, अंगहीन (अपाहज), अनाथ, कोढ़ी, विधवा या कोई भी ज़रूरतमंद, विद्या और कला कौशल की वृद्धि, गोशाला, अनाथालय, हस्पताल आदि दान के सुपात्र हैं।

अगर कोई व्यक्ति दान लेकर उस धन को शराब, मांस, तम्बाकू, जुआ, सट्टा, व्यभिचार आदि दुष्कर्मों में लगाता है उससे उसके मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर की हानि होती है। अतः उसे सुख की बजाए दुःख भोगना पड़ता है। इसमें भागी दान देने वाला भी होता है। जैसे पत्थर की नाव में बैठने वाला तथा नाव दोनों ही डूबते हैं।

न पापत्वाय रासीय। (अथर्ववेद)

अर्थात् मैं पाप कर्म के लिए कभी दान न दूँ।

धनिने धनं मा प्रयच्छ। दरिद्रान्भर कौन्तेय। (महाभारत)

अर्थात् हे युधिष्ठर ! धनवानों को धन मत दो, दरिद्रों की पालना करो।

भरे पेट को रोटी देना उतना ही गलत है जितना स्वस्थ को औषधि। रोटी भूखे के लिए है और औषधि रोगी के लिए है। समुद्र में वर्षा हुई व्यर्थ है।

सृष्टि में ईश्वर का ऐसा नियम है कि जो कोई किसी को जितना सुख पहुँचाता है ईश्वर के न्याय से उतना ही सुख उसे भी मिलता है। इसलिये दान का उद्देश्य प्राणियों को अधिक से अधिक सुख पहुँचाना होता है। कठोपनिषद् में लिखा है ऐसा दान जिसके लेने से लेने वाले को सुख न मिले, देने वाले को भी आनन्द नहीं मिलता।

गीता में तीन प्रकार का दान बताया गया है।

सात्त्विक दान—उचित समय पर तथा उचित स्थान पर किसी ऐसे सुपात्र को सत्कारपूर्वक दिया हुआ दान जिससे किसी प्रतिफल की आशा न हो सात्त्विक दान कहलाता है।

राजसी दान–प्रतिफल की आशा से या भविष्य में किसी लाभ की आशा से दिया हुआ दान और जिसे देने में दु:ख होता हो ऐसा दान राजसी दान होता है।

तामसी दान–गलत स्थान पर और गलत समय पर कुपात्र को बिना उचित सत्कार के अथवा तिरस्कारपूर्वक दिया हुआ दान तामस दान है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में प्राचीन काल का एक दीक्षान्त भाषण है। उसमें आचार्य अपने शिष्य को स्नातक होने पर और उपदेश के साथ-साथ यह भी उपदेश देता है–"**श्रद्धया** देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।" **अर्थात्** यदि दान देने में श्रद्धा है तो दान देना, यदि श्रद्धा नहीं भी है तो भी दान देते रहना। संसार में यश पाने के ख्याल से दान देना। दूसरे लोग दान दे रहे हैं, उन्हें देखकर लज्जावश भी दान देना। इस भय से भी दान देना कि यदि नहीं दूँगा तो परलोक न सुधरेगा, कमाया हुआ धन भी सार्थक न होगा। इस विचार से भी दान देते रहना कि गुरु के सामने प्रतिज्ञा की थी कि दान दूँगा।

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगो-महीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्।। (मनुस्मृति)

अर्थ–संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण, घृत आदि इन सब दानों से वेद विद्या का दान अति श्रेष्ठ है।

इसलिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें।

महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि यदि ब्राह्मण विद्यार्थियों को पढ़ाकर के दक्षिणा लेता है या यज्ञ करवा के दक्षिणा लेता है और इस प्रकार से अपनी आजीविका करता है तो यह उत्तम कार्य है। यह दान नहीं कहलाता। बिना कुछ किए अपने निर्वाह अर्थ दूसरों से धन या पदार्थ लेना नीच कर्म है।

* * * *

१६. स्वर्ग नरक आदि

स्वर्ग, नरक–स्वर्ग या नरक नाम के कोई विशेष स्थान नहीं हैं। अपितु सुख का नाम स्वर्ग और दु:ख का नाम नरक है।

पुण्य, पाप–पुण्य का अर्थ है परोपकार आदि अच्छा काम। पाप का अर्थ है अन्याय आदि गलत काम।

जाति–मनुष्य, गाय, घोड़ा, कुत्ता, सांप, चिड़िया आदि अलग-अलग जातियां हैं। सभी मनुष्यों की एक ही जाति है।

पूजा—ज्ञान आदि गुण वालों का यथायोग्य सत्कार करना।

जड़—जो वस्तु ज्ञान आदि गुणों से रहित है।

चेतन—जो पदार्थ ज्ञान आदि गुणों से युक्त है।

देव, देवी, देवता—विद्वान् और परोपकारी मनुष्य।

जन्म—शरीर और आत्मा का संयोग।

मरण—शरीर और आत्मा का वियोग।

विश्वास—सच्चाई को मानना, झूठ को न मानना।

ज्ञान और कर्म—बिना कर्म ज्ञान व्यर्थ है, बिना ज्ञान कर्म अंधेरे में भटकने के समान है।

आचरण—विद्या प्राप्त कर उस पर आचरण न करने वाला मनुष्य ऐसे है कि जैसे गधे की पीठ पर धान लदा हो जिसका बोझ तो उठा रहा है पर खा नहीं सकता।

परोपकार—अपने सब सामर्थ्य से दूसरे प्राणियों के सुख के लिए तन, मन, धन, से प्रयत्न करना।

सदाचार—सत्य का आचरण तथा असत्य का त्याग।

अतिथि—जिसकी आने और जाने की कोई निश्चित तिथि न हो तथा जो विद्वान् होकर सब जगहों पर घूम कर सत्योपदेश से सब जीवों का उपकार करता है।

भावना—जो वस्तु जैसी है उसको वैसा ही समझ लेना।

पण्डित—सच और झूठ को विवेक से जानने वाला, धर्मात्मा, सत्यप्रिय, विद्वान् और सब का हितकारी मनुष्य।

मूर्ख—जो अज्ञान, हठ आदि दोष सहित है।

शास्त्र—जो सत्य विद्याओं के प्रतिपादन से युक्त है और जिससे मनुष्य को सत्य शिक्षा मिले।

विज्ञान—तिनके से लेकर ईश्वर पर्यन्त सभी पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर उनसे उपकार लेना ही विज्ञान कहलाता है।

वैराग्य—सब बुरे कामों और दोषों से अलग रहना।

* * * *

२०. यक्ष-धर्मराज संवाद

(महाभारत से)

प्रश्न—प्रसन्न कौन है ?

उत्तर—पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वगृहे।

अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते।।

अर्थ–जिसके घर में चाहे पांचवें या छठे दिन ही सब्जी बनती है परन्तु जो किसी का ऋणी (करजाई) नहीं है तथा न ही वह रोटी के लिए पराधीन हुआ परदेश में रहता है, वही सुखी है।

प्रश्न–आश्चर्य क्या है ?

उत्तर–अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।
शेषाः जीवितुमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतःपरम्।।

अर्थ–प्रतिदिन प्राणी मरते हैं। बाकी रहे प्राणी उन्हें देखकर भी सदा जीवित रहने की इच्छा करते हैं। इससे बड़ा आश्चर्य और क्या होगा।

प्रश्न–धर्म, अर्थ, काम परस्पर विरोधी हैं। इन नित्य विरोधियों का एक स्थान पर संगम कैसे होता है ?

उत्तर–जब धर्मात्मा पुरुष और धर्मप्रिय पत्नी आपस में एक दूसरे के अनुकूल व्यवहार करते हैं, तब धर्म, अर्थ, काम का संगम हो जाता है।

प्रश्न–दम्भ क्या है ?

उत्तर–दिखावे के लिए किया धर्म दम्भ (छल) है।

प्रश्न–उत्तम स्नान कौन सा है ?

उत्तर–मन के मल का त्याग उत्तम स्नान है।

प्रश्न–श्राद्ध का काल क्या है ?

उत्तर–जब उत्तम ब्राह्मण (विद्वान् और परोपकारी उपदेश करने वाला) मिले वही श्राद्ध का समय है।

प्रश्न–साधु कौन है और असाधु कौन ?

उत्तर–जो सब जीवों के हित के लिए जिए वही साधु और जो दयाहीन हो वह असाधु।

प्रश्न–ब्राह्मण को दान क्यों दिया जाता है ?

उत्तर–ब्राह्मण को धर्म (न्याय, परोपकार और विद्या के प्रचार) के लिए दान दिया जाता है।

प्रश्न–देवकृत सखा या मित्र कौन है ?

उत्तर–पत्नी देवकृत श्रेष्ठ मित्र है।

प्रश्न–अमृत क्या है ?

उत्तर–गौओं का दूध अमृत है।

प्रश्न—भोगो को भोगता हुआ बुद्धिमान् कौन है ?

उत्तर—देवता (विद्वान्), अतिथि (अचानक घर में आया हुआ सदुपदेशक) तथा भृत्य (अपने अधीन व आश्रित लोग) को संतुष्ट करके जो भोगता है वह बुद्धिमान् है। अर्थात् जो इनको भोजन, वस्त्र से प्रसन्न रखता है, वही स्वयं भोग भोगता हुआ बुद्धिमान् है।

प्रश्न—लज्जा क्या कहाती है ?

उत्तर—पापाचार से हट जाना ही लज्जा है।

* * * *

२१. पवित्रता

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति।। (मनुस्मृति)

अर्थ—जल से शरीर के ऊपर के अंग पवित्र होते हैं, आत्मा और मन नहीं। मन तो सत्य मानने, सत्य बोलने और सत्य करने से शुद्ध होता है। विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सह के धर्म का पालन करने से जीवात्मा पवित्र होता है। ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि दृढ़ निश्चय पवित्र होती है।

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्यकारिणः।
प्रच्छन्नपापा जप्येन तपसा वेदवित्तमाः।। (मनुस्मृति)

अर्थ—विद्वान् सहनशीलता से शुद्ध होता है, बुरा काम करने वाला दान से, छुपकर पाप करने वाला पश्चात्ताप से तथा वेद को जानने वाला वेदानुकूल आचरण से शुद्ध होता है।

* * * *

२२. धन कमाने में पवित्रता

धन मनुष्य जीवन के लिए परमावश्यक वस्तु है। वेद ने खूब धन कमाने का आदेश दिया है। परन्तु कैसे ? मेहनत और ईमानदारी से। यही सभी के हित में है।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे।
यशसं वीरवत्तमम्।। (ऋग्वेद)

अर्थ—मनुष्य पुष्टिकारक, यशदायक और बलदायक धन ऐश्वर्य को ही प्रतिदिन अपने घोर परिश्रम से प्राप्त करे।

नेहेतार्थान्प्रसङ्गेन न विरुद्धेन कर्मणा।
न विद्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि यतस्ततः॥ (मनुस्मृति)

अर्थ—कभी भी किसी दुष्ट के प्रसंग से धन इकट्ठा न करे, न गलत काम से और न किसी वस्तु के होते हुए उसे छिपा करके ही। चाहे कितना भी दुःख उठाना पड़े तो भी पाप से धन न बटोरे।

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुर्चिन मृद्वारिशुचिः शुचिः॥ (मनुस्मृति)

अर्थ—सभी प्रकार की शुद्धियों में अर्थ से सम्बद्ध शुद्धि ही परम शुद्धि है। जो धर्म (न्याय) ही से पदार्थों का संचय करना है वही सब पवित्रताओं में उत्तम पवित्रता है अर्थात् जो अन्याय से किसी पदार्थ का ग्रहण नहीं करता वही पवित्र है। किन्तु जल, मिट्टी आदि से जो पवित्रता होती है वह धर्म के समान उत्तम नहीं है।

ब्याज लेने देने के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने ग्रन्थ 'संस्कार-विधि' में लिखते हैं—सवा रुपये सैकड़े (मासिक) से अधिक, चार आने (२५ पैसे) सैकड़े से कम ब्याज न लेवे और न देवे। जब दूना धन आ जाए उससे आगे और न लेवे और न देवे। जितना कोई कम ब्याज लेगा उतना ही उसका धन बढ़ेगा और कभी धन का नाश और बुरी संतान उसके घर में न होंगे।

* * * *

२३. पाँच क्लेश

योगदर्शन में पांच प्रकार के क्लेश बताए हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश। इनमें अविद्या ही बाकी चार क्लेशों की जननी है।

१. अविद्या—चार प्रकार की है। एक-नित्य को अनित्य तथा अनित्य को नित्य मानना, शरीर तथा भोग के पदार्थों को ऐसे समझना तथा व्यवहार करना कि जैसे ये सदा रहने वाले हैं। आत्मा, परमात्मा तथा सत्य, न्याय आदि गुणों व धर्म को ऐसा मानना कि जैसे ये सदा रहने वाले नहीं हैं। दूसरा—अपवित्र को पवित्र तथा पवित्र को अपवित्र मानना, नदी, तालाब, बावड़ी आदि में स्नान से या एकादशी आदि के व्रत

(फाके) से समझना कि पाप छूट जायेंगे। सत्य भाषण, न्याय, परोपकार, सब से प्रेमपूर्वक बर्तना आदि में रुचि न रखना। तीसरा—दुःख के कारण को सुख का कारण तथा सुख के कारण को दुःख का कारण मानना—काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, ईर्ष्या, द्वेष तथा विषय वासना में सुख मिलने की आशा करना। प्रेम, मित्रता, सन्तोष, जितेन्द्रियता आदि सुख के कारणों में सुख न समझना। चौथा—जड़ को चेतन तथा चेतन को जड़ मानना, पत्थर आदि की पूजा ईश्वर पूजा समझना तथा चेतन मनुष्य, पशु, पक्षी आदि को दुःख देते हुए स्वयं जरा भी महसूस न करना कि जैसे वे निर्जीव हों।

२. **अस्मिता**—जीवात्मा और बुद्धि को एक समझना अस्मिता है। अभिमान के नाश होने पर ही गुणों के ग्रहण में रुचि होती है।

३. **राग**—जो जो सुख संसार में भोगे हैं, उन्हें याद करके फिर भोगने की इच्छा करना राग कहलाता है। हर संयोग के पश्चात् वियोग होता है—जब ऐसा ज्ञान मनुष्य को हो जाता है तब यह क्लेश मिट जाता है।

४. **द्वेष**—जिससे दुःख मिला हो उसके याद आने पर उसके प्रति क्रोध होता है, यही द्वेष है।

५. **अभिनिवेश**—सब प्राणियों को इच्छा होती है कि हम सदा जीवित रहें, कभी मरें नहीं, यही अभिनिवेश है। यह पूर्व जन्म के अनुभव से होता है। मरने का भय मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग सभी को बराबर बना रहता है।

* * * *

२४. पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा

पुरुषार्थ चार प्रकार का है—(एक) अप्राप्त वस्तु को ईमानदारी से प्राप्त करने का प्रयत्न करना, (दूसरा) प्राप्त पदार्थों की रक्षा करना, (तीसरा) रक्षित पदार्थों को बढ़ाते रहना, (चौथा) बढ़े हुए धन तथा पदार्थों का सत्यविद्या की उन्नति में तथा सब का हित करने में खर्च करना।

पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा है क्योंकि पुरुषार्थ से ही संचित प्रारब्ध बनता है। पुरुषार्थ के सुधरने से प्रारब्ध सुधरता तथा बिगड़ने से बिगड़ जाता है। उदाहरण—जैसे किसी व्यक्ति ने गेहूँ की खेती की। अनाज पककर तैयार हो गया तथा घर लाने तक सब काम उसने किया। यह पुरुषार्थ है। घर में पड़ा गेहूँ प्रारब्ध है। यह प्रारब्ध उसके पुरुषार्थ से ही बना है। यदि वह काम न करता तो उसके घर में अनाज न आता। दूसरा

उदाहरण–किसी व्यक्ति ने किसी दूसरे प्राणी को सुख दिया। उस सुख देने के बदले में उसे भी ईश्वर की न्याय व्यवस्था से उतना ही सुख मिलेगा। इस प्रकार उसने जो दूसरे को सुख देने का काम किया यह उसका पुरुषार्थ है। उसके बदले में उसे जो सुख मिलता है वह उसका संचित प्रारब्ध है। यही अवस्था किसी को दुःख देने की है।

* * * *

२५. व्यवहार

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां
भावनातश्चित्तप्रसादनम्। (योगदर्शन)

अर्थ–जो सुखी हैं उनके प्रति मित्रता की भावना रखो। उनके बल, पराक्रम, सम्मान और सम्पत्ति पर जलो मत। जो दुःखी हैं उनके प्रति दयादृष्टि रखो। पीड़ितों की पीड़ा हरण करो। असहाय को सहारा दो। जो पुण्यात्मा (शुभ कर्म करने वाले) हैं उनके प्रति प्रसन्नता रखो। उनकी शोभा देखकर तथा प्रशंसा सुनकर आनन्दित होवो। जो पापी (दुष्ट कर्म करने वाले) हैं उनके प्रति उपेक्षा भाव रखो। उनसे न प्रेम रखो और न बैर रखो। उपरोक्त व्यवहार चित्त को शुद्धि और प्रसन्नता देने वाला है।

आपसी व्यवहार–महर्षि दयानन्द के शब्दों में उनकी पुस्तक 'व्यवहारभानु' से–सरकार और प्रजा को कैसे बर्तना चाहिये–सरकार प्रजा के लिए अच्छे माता पिता के समान और प्रजा सरकार से अच्छी सन्तान की तरह वर्तकर आपस में सुख और आनन्द बढ़ावें।

पड़ोसियों को आपस में कैसे रहना चाहिये–पड़ोसी के साथ ऐसा बर्ताव करें कि जैसा अपने शरीर के लिए करते हैं। मित्र के लिए भी वैसा ही कर्म करें।

स्वामी-सेवक कैसे व्यवहार करें–स्वामी सेवक के लिए ऐसा व्यवहार करें कि जैसा अपने हाथ, पैर आदि अंगों की रक्षा के लिए करते हैं। सेवक स्वामियों के लिए ऐसे वर्तें कि जैसे अन्न, जल, वस्त्र और घर आदि शरीर की रक्षा के लिए होते हैं।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ (अथर्ववेद)

अर्थ–भाई भाई से द्वेष न करे, बहिन बहिन से द्वेष न करे। सब एक दूसरे के अनुकूल, एक चित्त और एक उद्देश्य वाले होकर एक दूसरे के प्रति कल्याणकारी और सुखप्रद रीति से मधुर बोला करें।

क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्यस्येहानुशयो भवेत्।
सोऽन्तर्दशाहात् तद् द्रव्यं दद्यात् च एव आददीत वा।। (मनुस्मृति)

अर्थ–किसी वस्तु को खरीदकर अथवा बेचकर अगर किसी व्यक्ति को मन में पश्चात्ताप अनुभव हो तो वह दस दिन के अन्दर उस वस्तु को लौटा दे या लौटा ले।

* * * *

२६. श्राद्ध-तर्पण

श्रद्धा से जो काम किया जाए उसे श्राद्ध कहते हैं। तृप्ति करने का नाम तर्पण है। पितरों का श्राद्ध और तर्पण करना चाहिए, वर्ष में एक दो बार ही नहीं अपितु प्रतिदिन करना चाहिए। इस सम्बन्ध में मुख्य प्रश्न यह है कि पितर कौन हैं ? शास्त्रों के अनुसार जीवित वृद्ध माता पिता, दादा दादी, नाना नानी आदि तथा कोई भी विद्वान् परोपकारी मनुष्य पितर कहलाते हैं। इन सब को भोजन, वस्त्र, मधुर, भाषण, मान-सम्मान आदि से सन्तुष्ट रखना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है, यही इनका श्राद्ध और तर्पण है।

जो मनुष्य मर चुके हैं, उन पर ये बातें लागू नहीं होतीं। इसलिए मरे हुओं को पितर कहना गलत है। वैसे भी जो मर चुके हैं वे अपने कर्मों के अनुसार ईश्वर की व्यवस्था से दूसरे शरीरों में चले गए हैं। वे अब कहां किस मनुष्य या पशु, पक्षी आदि के शरीर में हैं यह भी ईश्वर के सिवाए और कोई नहीं जानता। इसलिए उनका श्राद्ध और तर्पण बिल्कुल असंगत सी बात है। यजुर्वेद में कहा है–भस्मान्तं शरीरम्। अर्थात् मनुष्य शरीर के प्रति हमारा कर्त्तव्य कर्म उसके मरने पर उसका दाह संस्कार करने तक ही है, उसके पश्चात् कुछ भी नहीं है।

मनुष्य का अन्य मनुष्यों से सम्बन्ध केवल तब तक है जब तक वह जीवित है। मरने के पश्चात् उसका उनसे कोई भी नाता नहीं रहता। मरने के पश्चात् उसके निमित्त किए हुए दान पुण्य आदि का फल भी उस मरने वाले को नहीं मिलता। किसी भी शुभ अशुभ कर्म का फल उसके कर्त्ता को ही मिला करता है, अन्य को नहीं।

नायं परस्य सुकृतं दुष्कृतं चापि सेवते।
करोति यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते।। (महाभारत, शान्तिपर्व)

अर्थ–यह जीव दूसरे के पाप या पुण्य का सेवन नहीं करता है। जैसा कर्म स्वयं करता है वैसा ही फ़ल भोगता है।

ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेयाः धर्मे च पथि वर्तिनः॥ (वाल्मीकि रामायण)

अर्थ–बड़ा भाई, पिता और विद्या देने वाला–ये तीनों तथा धर्म (न्याय) के मार्ग पर चलने वाला पितर जानने चाहिएं।

* * * *

२७. पञ्च देव पूजा

देव शब्द का अर्थ है देने वाला–ज्ञान देने वाला, भोजन देने वाला, प्रकाश देने वाला आदि। देवी, देवता शब्द देव के ही पर्यायवाची हैं।

सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, जल, पृथिवी आदि देवता जड़ हैं। जड़ वह पदार्थ होता है जिसे ज्ञान न हो। जड़ पदार्थ की पूजा का कोई मतलब नहीं बनता। हां, हवन-यज्ञ करके जल और वायु की शुद्धि करनी चाहिये जिससे सभी प्राणियों को सुख मिले।

पूजनीय देव पांच हैं–

१. **माता**–सन्तानों को तन, मन, धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, ताड़ना कभी न करना।

२. **पिता**–उसकी भी माता के समान सेवा करना।

३. **आचार्य**–जो विद्या और सुशिक्षा का देने वाला है उसकी तन, मन, धन से सेवा करनी।

४. **अतिथि**–जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सबकी उन्नति चाहने वाला संसार में घूमता हुआ, सत्य उपदेश से सबको सुखी करता है उसकी सेवा करनी।

५. स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए अपनी पत्नी पूजनीय है।

ये पांच मूर्तिमान देव हैं जिनके संग से मनुष्य शरीर की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। इनकी सेवा ही पंचदेव पूजा या पंचायतन पूजा है।

परमेश्वर भी देव है। वह सबसे बड़ा महादेव है। उसकी पूजा का प्रकार पहले लिख आए हैं।

* * * *

२८. भ्रम निवारण

सूर्यग्रहण तथा चन्द्र ग्रहण–पृथिवी सूर्य के गिर्द घूमती है और चन्द्रमा पृथिवी के गिर्द। जब सूर्य और पृथिवी के बीच सीध में चन्द्रमा आ जाता है, तब सूर्य की पूरी रोशनी पृथिवी पर नहीं पहुँचती, बीच में चन्द्रमा की रुकावट आ जाती है। ऐसी स्थिति को सूर्य ग्रहण कहा जाता है। जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच सीध में पृथिवी आ जाती है तब चन्द्रमा पर पृथिवी की छाया पड़ती है। इस स्थिति का नाम चन्द्रग्रहण है। यह ईश्वर की व्यवस्था से तथा गणित विद्या के आधार पर ही होता है। इसमें पुण्य या पाप कुछ नहीं होता। ये स्थितियां थोड़े समय के लिए रहती हैं और फिर बदल जाती हैं। इन्हें बदलने के लिए दान आदि देना–लेना अज्ञानता और ढोंग है।

भूत, प्रेत–जब कोई मनुष्य मर जाए तब उसके मृतक शरीर का नाम प्रेत है। और जब मृतक शरीर का दाह संस्कार हो जाए तब उसका नाम भूत है। भूत उसे कहते हैं जो पहले हो और अब न रहा हो। भूत, प्रेत के नाम से डरने डराने और उसका उपाय करने कराने के लिए झाड़ फूंक आदि छल कपट और मूर्खता है।

ग्रह–सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु–इन नौ को नवग्रह कहते हैं। वास्तव में ये सारे ग्रह नहीं हैं। सूर्य नक्षत्र है क्योंकि वह स्वयं प्रकाशमान है। सूर्य के गिर्द घूमने वाले मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि–ये पांच ग्रह हैं क्योंकि ये स्वयं प्रकाशित नहीं हैं। चन्द्रमा उपग्रह है क्योंकि वह पृथिवी के गिर्द घूमता है। राहु और केतु न नक्षत्र हैं, न ग्रह हैं और न ही उपग्रह हैं। ये तो काल्पनिक नाम हैं और इन्हें ग्रह कहने वालों की अज्ञानता और धूर्त्तता ही इसमें कारण है। सूर्य और चन्द्र को राहु, केतु द्वारा ग्रसित मानना तथा उन्हें छुड़वाने के लिए मनुष्यों का नदी, तालाब आदि में स्नान करना और दान देना आदि घोर अज्ञानता है।

ये ग्रह जड़ होने से न प्रसन्न होते हैं और न अप्रसन्न, न किसी पर क्रूर और न सौम्य होते हैं। अगर कोई कहे कि सूर्य एक पर क्रूर और दूसरे पर सौम्य है तो दोनों को गर्मी की दोपहर की धूप में नंगे पांव चलाओ। जिस पर क्रूर हो उसके पैर और शरीर जल जाएं और जिस पर सौम्य हो उसके पैर और शरीर न जलें। पर ऐसा नहीं होता। इससे समझ लेना चाहिये कि ग्रहों की यह लीला सब पाखण्ड है।

ज्योतिष–जो गणित विद्या है जिससे सूर्य ग्रहण, चन्द्रग्रहण, सूर्योदय, सूर्यास्त आदि का समय बताते हैं, वह सब सच्ची है। और जो कर्मफल आदि बताते हैं वह सब झूठी है। कर्मफल बताने वाली ज्योतिष विद्या वेद या वेदानुकूल किसी ग्रन्थ में नहीं लिखी, यह सब छलावा है।

लग्न वा मुहूर्त—कोई भी शुभ कर्म करने के लिए अनुकूल ऋतु, वार और समय निश्चित् करना चाहिए। यह पाधे से पूछने की बात नहीं है। यह तो आपकी सुविधा की बात है। बाकी रहे सुख-दुःख, वह तो अपने कर्मों के हिसाब से भोगने ही पड़ते हैं। किए हुए कर्मों के फल से बिना भोगे छूटने का संसार में कोई भी उपाय नहीं है। आगे से दुष्कर्म करने से बचना ही मुख्य बात है।

जन्मपत्र—जन्मपत्र बनवाना व्यर्थ और शोक कारक है। व्यर्थ इसलिए कि कर्मों के भोग को कोई टाल नहीं सकता। और शोक कारक इसलिए कि बच्चे के जन्म से जो प्रसन्नता होती है वह पाधे की बनाई जन्मपत्री के आधार पर मीठी-कड़वी बातें सुनकर शोक में बदल जाती है। और भी, कर्मफल बताने वाली कोई भी विद्या संसार में नहीं है। यह तो ईश्वर का क्षेत्र है और ईश्वर ही जानता है, मनुष्य नहीं।

मन्त्र, तन्त्र—कोई कहे कि मन्त्र पढ़के तागा तावीज बना दें तो सब विघ्न दूर हो जाएं। ऐसा करने वालों के अपने लड़का, लड़की भी बीमार होते हैं और मरते हैं। ईश्वर की न्याय व्यवस्था को कोई नहीं बदल सकता। अतः ये सब धूर्तता की बातें हैं। ऐसे ही जादू, टोना आदि स्वार्थी और ढोंगियों की बातें हैं। इन बातों का वैदिक शास्त्रों में कहीं कोई उल्लेख नहीं है।

बुद्धिमान् लोगों को ऐसी गलत बातों में नहीं फंसना चाहिए।

* * * *

२६. गुरु धारण करना चाहिये या नहीं

सांख्य दर्शन में लिखा है—**ऋते ज्ञानात् न मुक्ति।**

अर्थ—ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती और मुक्ति कहते हैं दुःखों से छूटने को।

ज्ञान किसे कहते हैं ? सभी पदार्थों के गुणों की सही जानकारी होना तथा उनसे ठीक-ठीक उपकार लेना ही ज्ञान है। ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को जान लेना, ईश्वर की भक्ति का सही स्वरूप जानकर उसे अपनाना, अपनी आत्मा को जानना तथा सभी प्राणियों में अपने जैसी आत्मा जानकर उनसे वैसा ही व्यवहार करना, संसार के सभी पदार्थों का ठीक-ठीक उपभोग करना यह ज्ञान है।

ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेद, शास्त्र, मनुस्मृति, उपनिषद् आदि उत्तम ग्रन्थ पढ़ना, उन पर चिन्तन-मनन करना, उन्हें सम :ना तथा अपने जीवन में उन्हें अपनाना परम आवश्यक है।

अन्धेरे में रस्सी को सांप समझा जा सकता है। परन्तु सूर्य की रोशनी में वह सन्देह नहीं रहता। इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर सही और गलत का भेद स्पष्ट दिखाई देने लग जाता है। सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य और धर्म-अधर्म का पता लग जाता है। यह भेद जानकर मनुष्य गलत को छोड़ने और सही को अपनाने में लग सकता है। यही दुखों से छूटने का एक मात्र रास्ता है।

विद्यार्थी स्कूलों और कालिजों में ज्ञान प्राप्त करते हैं। वे भाषा, ज्ञान, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित आदि का ज्ञान ग्रहण करते हैं। ऐसे ही वेद आदि शास्त्रों का भी ज्ञान प्राप्त किया जाना चाहिये। किसी आचार्य से या स्वयं प्रयास करके।

दूसरी बात–ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी दलाल, वकील, पीर, पैगम्बर, अवतार या गुरु की आवश्यकता नहीं है। ईश्वर सभी प्राणियों के अन्दर बसा हुआ है। वह सभी के उतना ही समीप है। आत्मा के द्वारा ही ईश्वर को जाना जा सकता है क्योंकि ईश्वर आत्मा में विद्यमान है। आत्मा और परमात्मा के बीच में और कुछ नहीं है। मनुष्य अपने ज्ञान से तथा मन की पवित्रता से ही ईश्वर को जानता है। ईश्वर किसी की सिफारिश नहीं मानता। ईश्वर किसी एक को अपना दूत बनाके भेजे तो वह पक्षपाती बनता है। वह तो सभी के लिए एक समान है।

आज कल जो सैकड़ों गुरु बने हुए हैं वे तो केवल धन दौलत लूटने के लिए अपनी ऐशो इशरत के लिए तथा मान सम्मान के लिए चेला चेली बनाते हैं। ये गुरु ज्ञान की बजाय अज्ञान फैलाते हैं। ईश्वर के स्थान पर अपनी पूजा करवाते हैं। वेद आदि उत्तम ग्रन्थों की बजाय अपनी स्वार्थ पूर्ण घटिया पुस्तकें पढ़ने को देते हैं। तथा अपनी तस्वीरें देते हैं। अपने चेले चेलियों को अन्धविश्वासी बना देते हैं ऐसे कि जो गुरु कहे वह सब सत्य और कोई जो कहे वह सब झूठ। गुरु का झूठा खाने में गौरव मानते हैं। धूर्त्त गुरु मूर्खों को अपने चेले बनाते हैं। ये चेले गुरु के पीछे ऐसे लगते हैं कि अपनी ज्ञान की आँखें बन्द कर लेते है। यह स्थिति दु:खों से छुटने की नहीं है अपितु घोर अन्धकार, अज्ञान तथा दु:खों में गिराने की है। इसलिए ऐसे गुरु, चेला बनना बहुत बुरा काम है। दु:खों से छूटना या मुक्ति पाना कोई आसान काम नहीं है। यह ऐसा नहीं है कि गुरु ने फूंक मारी और सभी दु:ख उड़ गए। समझदार लोगों को धूर्त्त बने गुरुओं के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये।

आज कल के एक तथाकथित गुरु की अपनी लिखी पुस्तक में से–

"गुरु को दक्षिणा देनी ही चाहिये। न्याय से उपार्जित अपने संचित धन का आधा भाग या चौथाई अथवा यथाशक्ति से कुछ भी हो सके भक्ति पूर्वक गुरु को अर्पण करे। धन होते हुए अभाव नहीं दिखाना चाहिये। जो लोग वित्त शाठ्य करते हैं, धन रहने पर भी 'देना पड़ेगा' ऐसी लोभवृत्ति से गुरु को अभाव दिख ते हैं और अपने धर्म,

कर्म तथा अपने मन के वास्तविक भावों को गुरु से छिपाते हैं उनका अनर्थ ही होता है। इसलिए अपनी शक्ति के अनुसार गुरु को गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि निवेदन करना चाहिये और गुरु के पुत्र को तथा गुरु की धर्मपत्नी को भी वस्त्र, आभूषण निज शक्ति के अनुसार देना चाहिए। यदि गुरु के स्त्री, पुत्र न हों तो उनके प्रधान शिष्य को देना चाहिए और दीक्षा के दिन सबको यथा रुचि मिष्ठान भोजन कराना चाहिए।''

अपने हजारों चेलों से उनकी कमाई का आधा आधा भाग लेकर गुरु जी स्वयं तो धनाढ्य हो जाएं और चेले बेचारे गरीब हो जाएं। अपने लिए ही नहीं गुरुजी ने तो अपने पीछे अपने बेटे तथा अपनी पत्नी के लिए भी मांग लिया है। अगर न दो तो अनर्थ बता कर डरा दिया। इसे सरे आम डाका न कहें तो और क्या कहें ? काश ! ये चेले ऐसी धूर्त्तता को समझ लेते और इन ठग गुरुओं को मुँह न लगाते।

* * * *

अध्याय ४

राष्ट्र विषय

१. हमारा नाम आर्य है, हिन्दू नहीं

वेद, शास्त्र, मनुस्मृति, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता आदि सभी प्राचीन ग्रन्थों में आर्य शब्द ही मिलता है, हिन्दू नहीं।

संस्कृत के कोष 'शब्दकल्पद्रुम' में आर्य शब्द के अर्थ--पूज्य, श्रेष्ठ, धार्मिक, उदार, न्यायकारी, मेहनत करने वाला आदि किये हैं।

आर्यव्रता विसृजन्तो अधि क्षमि। (ऋग्वेद)

अर्थ– आर्य वे कहलाते हैं जो सत्य, न्याय, अहिंसा, पवित्रता, परोपकार, पुरुषार्थ आदि शुभ काम करते हैं।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। (ऋग्वेद)

अर्थ–सारे संसार को आर्य (श्रेष्ठ) बनाओ।

अनार्य इति मामार्याः पुत्र.विक्रायकं ध्रुवम्। (वाल्मीकि रामायण)

अर्थ–(राजा दशरथ राम को वन में भेजना न चाहते थे) वे कहते हैं–आर्य लोग (सज्जन) मुझे पुत्र बेचने वाले को निश्चय ही अनार्य (दुष्ट) बताएंगे।

महाभारत में आर्य शब्द वाले जो श्लोक पाये जाते हैं, उनमें 'आर्य' शब्द का अर्थ है–जो शान्त हुए बैर को नहीं बढ़ाता, जो अभिमान नहीं करता, जो निराश नहीं होता, जो मुसीबत में भी पाप नहीं करता, जो सुखी होने पर बहुत अधिक प्रसन्नता नहीं दिखाता, जो दूसरों के दुःख में कभी प्रसन्न नहीं होता, जो कायर नहीं है और जो दान देकर पश्चात्ताप नहीं करता।

हिन्दू शब्द मुसलमानों ने घृणा के रूप में हमें दिया है। यह फारसी भाषा का शब्द है। फारसी भाषा के शब्द कोश में 'हिन्दू' का अर्थ है–चोर, डाकू, गुलाम, काफिर, काला आदि। मुसलमान आक्रमणकारी जब भारत में आए उन्होंने यहां के लोगों को लूटा, मारा तथा पकड़ कर गुलाम बनाकर अपने साथ अपने देश में ले गए। वहां ले जाकर उनसे अनाज पिसवाया, घास खुदवाया, मल–मूत्र आदि उठवाया तथा

बाजारों में बेचा। तब उन्होंने यहां के लोगों को 'हिन्दू' नाम दिया। आठवीं सदी से पहले यानि कि मुसलमानों के आने से पहले भारतवर्ष में हिन्दू शब्द का प्रचलन न था, सब जगह आर्य और आर्यावर्त्त शब्द ही प्रसिद्ध थे। चीनी यात्री ह्यूनसांग भारत में सातवीं सदी में (सन् ६३१ से ६४५ तक) आया था। वह इस देश का नाम आर्य देश लिखता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के उद्‌गार–सज्जन ! अब हिन्दू नाम का त्याग करो और 'आर्य' तथा 'आर्यावर्त्त' इन नामों का अभिमान करो। गुण भ्रष्ट हम लोग हुए, परन्तु नाम भ्रष्ट तो हमें न होना चाहिये।

सन् १८७० में काशी में टेढ़ा नीम नामक स्थान पर काशी के राजा के अधीन एक धर्मसभा हुई। सभा में विश्वनाथ शर्मा, बाबा शास्त्री आदि ४५ विद्वानों ने विचार विमर्श के बाद यह व्यवस्था दी थी कि 'हिन्दू' नाम हमारा नहीं है, यह मुसलमानों की भाषा का है और इसका अर्थ है अधर्मी। अत: इसे कोई स्वीकार न करे।

हिन्दु–शब्दो हि यवनेषु अधर्मीजन बोधक:।
अतो नाहर्ति तत् शब्द बोध्यतां सकलो जन:।।

* * * *

२. हमारा अभिवादन नमस्ते ही है

नमस्ते का अर्थ–नम: + ते = नमस्ते, अर्थात् तेरे या आपके लिए आदर सत्कार। नम: का अर्थ है सत्कार, श्रद्धा तथा झुकना। ते का अर्थ तुम्हें या आपके लिए। संस्कृत भाषा में छोटे बड़े दोनों के लिए एक वचन का ही प्रयोग होता है। अत: **'ते' ही छोटे** बड़े सबके लिए आता है।

प्रश्न–बड़े छोटों को नमस्ते कहें क्या यह असंगत तथा अनुचित नहीं ?

उत्तर–नहीं। बड़ों का छोटों के प्रति आशीर्वाद ही उनकी पूजा अथवा सत्कार है।

नमस्कार = नम: + कार:, यानि सत्कार किया। परन्तु इसमें यह नहीं आया कि किसका सत्कार किया। इसलिए नमस्कार शब्द अधूरा है। नमस्ते ही ठीक है। परस्पर मिलने पर अभिवादन के तौर पर और कोई भी शब्द संगत (उचित) नहीं है।

शास्त्रों में नमस्ते का शब्द हजारों स्थानों पर मिलता है।

नमस्ते रुद्र मन्यवे। (यजुर्वेद)

अर्थ–दुष्टों को रुलाने वाले परमात्मा को नमस्कार हो।

सा होवाच–नमस्ते याज्ञवल्क्याय। (शतपथ ब्राह्मण)

गार्गी ने अपने पति याज्ञवल्क्य को नमस्ते कहा।

ज्येष्ठो राजन् वरिष्ठोऽसि नमस्ते भरतर्षभ। (महाभारत)

शकुनि ने युधिष्ठिर को नमस्कार किया।

हरए नमस्ते हरए नमह। (गुरुग्रन्थ साहब)

हरि (परमेश्वर) को नमस्कार है, नमस्कार है।

****

३. नारी का समाज में स्थान

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति जामयो तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा।

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च॥

(मनुस्मृति)

अर्थ–जिस कुल में पत्नी से प्रसन्न पति और पति से पत्नी सदा प्रसन्न रहती है उस कुल में निश्चित कल्याण होता है। यदि दोनों आपस में अप्रसन्न रहें तो उस कुल में नित्य लड़ाई झगड़ा रहता है।

जिस घर में नारियों का सत्कार होता है उस घर में उत्तम गुण, उत्तम पदार्थ तथा उत्तम सन्तान होते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता उस घर में चाहे कुछ भी यत्न करो सुख की प्राप्ति नहीं होती।

जिस घर वा कुल में स्त्रियां शोकातुर हो दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर वा कुल में स्त्रियां आनन्द, उत्साह और प्रसन्नता से भरी रहती हैं वह कुल सदा बढ़ता रहता है।

इस कारण से ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले पुरुषों को चाहिये कि इन स्त्रियों को सत्कार के अवसरों और उत्सवों में भूषण, वस्त्र, खान, पान आदि से सदा प्रसन्न रखें।

समाज के निर्माण में पुरुष और स्त्री का दोनों का बराबर का स्थान है। पुरुष और स्त्री गृहस्थ की गाड़ी के दो बराबर के पहिये हैं। गृहस्थ की उन्नति के लिए आवश्यक है कि ये दोनों ठीक प्रकार से एक दूसरे को सहयोग देते चलें। पुरुष और स्त्री दोनों के अपने अपने गुण हैं, अपने अपने क्षेत्र तथा अधिकार हैं। दोनों एक दूसरे के प्रतिद्वन्दी नहीं हैं अपितु सहयोगी तथा पूरक हैं। पुरुष इसलिए पुरुष है कि उसमें पौरुष अर्थात् बल पराक्रम है, दुष्ट का दमन तथा श्रेष्ठ की रक्षा में समर्थ है। माता निर्मात्री भवति 'माता' इसलिए इसका नाम है क्योंकि वह सन्तानों का निर्माण करती हैं। उन्हें जन्म देकर पालन पोषण करती है तथा उत्तम शिक्षा देती है। लज्जा तथा शालीनता नारी के स्वाभाविक गुण हैं। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर नारी भी पुरुष का पौरुष धारण कर सकती है जैसे झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने किया था।

मानवता के सिद्धान्त पुरुष तथा स्त्री दोनों के लिए बराबर के हैं। दोनों ही को एक विवाह करने की आज्ञा है। अगर पुरुष विधुर होने पर दूसरा विवाह कर सकता है तो स्त्री भी विधवा होने पर दूसरा विवाह कर सकती है। परन्तु यह नियम होना चाहिये कि विधुर पुरुष का विवाह विधवा स्त्री से ही हो। सती प्रथा, बाल विवाह, अनमेल विवाह तथा पर्दा प्रथा वेद और वैदिक संस्कृति के विपरीत हैं। दहेज प्रथा समाज पर लानत है और कालाधन इसके लिए जिम्मेदार है।

नारी को भोग विलास की वस्तु समझना, उसके शरीर का प्रदर्शन विज्ञापनों में करना, सिनेमाओं में तस्वीरों द्वारा उसके शरीर तथा हाव भाव के प्रदर्शन से पुरुषों का घटिया किस्म का मनोरंजन करके उनकी जेब से पैसे ऐंठना भारतीय सभ्यता और वैदिक संस्कृति के विरुद्ध हैं।

****

४. हिन्दी और संस्कृत भाषाएँ

हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाएं देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। देवनागरी लिपि और संस्कृत भाषा उतनी ही पुरानी हैं जितनी पुरानी यह सृष्टि यानि लगभग दो अरब वर्ष पुरानी। सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व तक सारे संसार में एक ही भाषा थी–संस्कृत तथा एक ही लिपि थी–देवनागरी। उस समय के संस्कृत ग्रन्थ अतुलनीय ज्ञान के भण्डार हैं तथा संस्कृत एक सम्पूर्ण तथा मधुरतम भाषा है। संसार में केवल देवनागरी लिपि ही ऐसी लिपि है जिसमें सभी ध्वनियां हैं। सभी अक्षर तथा शब्द जैसे लिखे जाते हैं वैसे ही पढ़े व बोले जाते हैं।

सभी अक्षरों की ध्वनियां स्वाभाविक हैं। इस कारण से संस्कृत भाषा आसानी से सीखी जा सकती है।

आर्य (हिन्दी) भाषा संस्कृत का अपभ्रंश (बिगड़ा हुआ) रूप है। आर्य भाषा की लिपि तो संस्कृत वाली देवनागरी है ही, बहुत से शब्द भी संस्कृत भाषा के ही हैं। हिन्दी भाषा में सबसे अधिक शब्द जिस भाषा में से हैं वह संस्कृत ही तो है। संस्कृत व हिन्दी भाषाओं तथा देवनागरी लिपि को अपनाने का अर्थ होगा संसार की सर्वोत्तम लिपि को अपनाना तथा अतुलनीय व अनन्त ज्ञान के भण्डार वेद आदि सत्शास्त्रों की रक्षा व प्रचार कर मानवमात्र का कल्याण करना। मानवमात्र को भाई बताने वाली संसार में अगर कोई विचारधारा है तो वह यही वैदिक संस्कृति है। वैदिक संस्कृति को मानने वालों ने कभी दूसरों पर अत्याचार नहीं किए, दूसरों के धन व पदार्थ नहीं छीने और न ही दूसरों की बहू बेटियों की इज्जत लूटी है।

****

५. गौरवमय प्राचीन भारत

(महर्षि दयानन्द के शब्दों में)

सत्यार्थ प्रकाश से–

यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसलिए सृष्टि के आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे। पारसमणि पत्थर सुना जाता है और यह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्यावर्त्त देश से मिश्र वालों, उनसे यूनान, उनसे रूम (रोम) और उनसे यूरोप देशों में, उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है।

देखो काशी के 'मानमन्दिर' शिशुमारचक्र को कि जिसकी पूरी रक्षा भी नहीं रही है तो भी कितना उत्तम है कि जिससे अब तक भी खगोल का बहुत सा वृत्तान्त विदित होता है।

भोजप्रबन्ध में लिखा है–राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे शिल्पी लोग थे कि जिन्होंने घोड़े के आकार का एक यान यंत्रकलायुक्त बनाया था जो एक घण्टे

में साढ़े सत्ताईस कोश (लगभग सत्तर किलोमीटर) जाता था। वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि बिना मनुष्य के चलाए कलायन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल (बहुत) वायु देता था। (राजा भोज अब से लगभग पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व हुए थे।)

सृष्टि के आरम्भ से लेकर पांच हजार वर्ष पूर्व पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे छोटे राजा रहते थे।

श्री कृष्ण तथा अर्जुन अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नियान नौका कहते हैं उस पर बैठ के पाताल (अमेरिका) में जाके महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आए थे।

धृतराष्ट्र का विवाह 'गंधार' जिसको कन्धार कहते हैं वहां की राजपुत्री से हुआ। माद्री पाण्डु की स्त्री 'ईरान' के राजा की कन्या थी। और अर्जुन का विवाह पाताल में जिसको अमेरिका कहते हैं वहां के राजा की लड़की उलोपी से हुआ था।

पहले जो लोग लड़ाईयां करते थे उन्हें विमान रखने के लिए विद्या भली प्रकार विदित थी। मैंने भी एक विमान रचना की पुस्तक देखी है। (महर्षि दयानन्द ने अपनी पुस्तक 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में विमान बनाने की विधि लिखी है।)

पूना प्रवचन से--एक अंग्रेजी विद्वान् डाक्टर हम को मिला। उसने मुझसे कहा कि हमारे प्राचीन आर्य लोगों में डाक्टरी औजार का कुछ भी प्रचार न था और उन्हें विदित न था। तब मैंने सुश्रुत का 'नेत्र अध्याय' जिसमें कि बारीक से बारीक औजार का वर्णन है निकालकर उसे दिखाया। तब उसको ज्ञान हुआ कि आर्य लोग चिकित्सा में बड़े चतुर थे और उन्हें औजारों की विद्या भी उत्तम ज्ञात थी।

परन्तु ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह ?

****

६. आर्य भारतवर्ष के ही मूल निवासी हैं

अब से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व, जब हम अंग्रेजों के गुलाम थे, अंग्रेज इतिहासकारों ने कहा था कि हम आर्यों (हिन्दुओं) के पूर्वज भारतवर्ष में कहीं बाहर से आकर बसे थे। परन्तु इस बात का उन्होंने कोई भी प्रमाण नहीं दिया था। खोज और अध्ययन से पता लगता है कि अंग्रेजों की यह बात सत्य नहीं है। खुशामदी मनोवृत्ति वाले हिन्दू

इतिहासकारों ने भी अंग्रेजों की इस बात को बिना विचारे ही स्वीकार कर लिया तथा इस झूठ को सत्य मानकर इसका प्रचार और प्रसार आरम्भ कर दिया।

संसार में सबसे पुराने कोई ग्रन्थ हैं तो वे हैं आर्यों के ग्रन्थ–वेद। संसार में सबसे पुराना कोई साहित्य है तो वह है आर्यों का संस्कृत भाषा में साहित्य। संस्कृत के किसी ग्रन्थ में ऐसा नहीं लिखा है कि आर्य भारतवर्ष में कहीं बाहर से आए थे। इस देश का नाम पहले आर्यावर्त्त था ऐसा बहुत से ग्रन्थों में लिखा मिलता है। आर्यावर्त्त से पहले इस देश का क्या नाम था कहीं भी नहीं लिखा मिलता। अत: निश्चित् है कि आर्यों से पहले इस देश में कोई और न था और न ही इस देश का कोई और नाम था। इसलिए यह बात कि 'आर्य' इस देश में कहीं बाहर से आकर बसे थे' सत्य नहीं है।

यह तथ्य सभी जानते हैं और स्वीकार करते हैं कि मुसलमान पिछले लगभग एक हजार वर्षों से अरब देशों से चलकर यहां आने लगे हैं। पिछले तीन सौ वर्षों से यूरोप के गोरे अंग्रेज आदि यहां आने लगे थे। लगता है कि अंग्रेज शासकों ने भारतवर्ष के मूल निवासी आर्यों (हिन्दुओं) का मनोबल गिराने के लिए उन्हें अपने (अंग्रेजों) तथा मुसलमानों के समान ही बाहर से आए बताया था।

लोकमान्य तिलक भी अंग्रेजों की इस चाल में फंस गए थे। उन्होंने भी अंग्रेजों की इस बात का अनुसरण किया। जब उनसे इस बात का प्रमाण देने के लिए कहा गया तो उन्होंन सहजता से कह दिया कि "हमने मूल वेद नहीं पढ़े, हमने तो साहब लोगों (यूरोप के विद्वानों) का अनुवाद पढ़ा है।"

आर्यों (हिन्दुओं) में फूट डलवाने के लिए अंग्रेजों ने द्रविड़ों को आर्यों से भिन्न बताया था। जबकि वास्तविकता यह है कि द्रविड़ शब्द आर्य ब्राह्मणों के दस कुलों में से पांच कुलों में होता है जिसमें आदि गुरु शंकराचार्य जैसे ब्राह्मण पैदा हुए।

पीछे रूस में एक अंतर्राष्ट्रीय गोष्ठी हुई थी। उसमें भारत सरकार के एक प्रतिनिधि मण्डल ने भी भाग लिया था। उस प्रतिनिधि मण्डल में इतिहासविद, भाषा वैज्ञानिक तथा पुरातत्ववेत्ता थे। उन्होंने गोष्ठी में भाग लेते हुए आर्यों (हिन्दुओं) के ईरान, अफगानिस्तान, मध्य एशिया आदि से आकर भारत में बस जाने की बात का एकमत होकर खण्डन किया था और उनके इस मत को गोष्ठी में उपस्थित सभी देशों के प्रतिनिधियों ने बहुत सराहा था। इस सम्बन्ध में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के ३१ अक्तूबर १९७७ के अंक में छपा था :–

There is no conclusive evidence of Aryan migration into India from outside according to Indian Historians, Linguists and Archaeologists who participated in the recent international seminar in Dushambe the

Capital of Soviet Republic of Tadjikistan. Dr. N. R. Bannerjee, Director of the National Museum and a member of the Indian delegation said that Indian Scholars made out this point at the seminar and the papers presented by them were very much appreciated.......................Ninety delegates from the Soviet Union, West Germany, Iran, Pakistan and India attended.

ईरान के स्कूलों में बच्चों को पढ़ाया जाता रहा है "आर्यों का एक समूह ईरान की ओर आया और यहीं बस गया। इसलिए अपने नाम पर उन्होंने इस देश का नाम ईरान रखा। हम उन आर्यों की सन्तान हैं।"

डेविड फ्रौले (David Frauley) ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है 'दी मिथ ऑफ दी आर्यन इनवेजन ऑफ इण्डिया'। वह लिखता है कि आर्यों के भारतवर्ष में कहीं बाहर से आने की बात तथा यहां के लोगों पर हमले की बात दोनों ही निराधार हैं। उन्नीसवीं सदी के इतिहासकारों ने अपनी बात को सिद्ध करने के लिए तथ्यों को तोड़ा मरोड़ा है। वह लिखता है कि भारत में आर्यों तथा अन्यों में धर्म और संस्कृति के आधार पर कोई भी भेद नहीं है। आर्य भारतवर्ष के ही मूल निवासी हैं। अंग्रेजों ने भारत में अपने आगमन को जायज सिद्ध करने के लिए ही यह बात घड़ी थी।

जो लोग कहते हैं कि आर्य भारत में कहीं बाहर से आए थे वे कहते हैं कि आर्य भारत में आज से तीन और साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व के बीच में आए थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती का मत है कि आर्य इसी देश के मूल निवासी हैं। उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में महाभारत काल से लेकर मुसलमानों का शासन आरम्भ होने तक यानि कि अब से पांच हजार वर्ष पूर्व से लेकर आठ सौ वर्ष पूर्व तक दिल्ली पर शासन करने वाले सभी आर्य राजाओं के नाम तथा उनके शासन काल दिए हैं। इनमें महाराजा युधिष्ठिर से लेकर महाराजा यशपाल तक एक सौ चौबीस राजे हुए जिन्होंने कुल चार हजार एक सौ सत्तावन वर्ष, नौ महीने, चौदह दिन राज्य किया। महाराजा युधिष्ठिर से पहले के सभी राजाओं के नाम महाभारत में लिखे हैं। इस बात से पूरी तरह प्रमाणित हो जाता है कि आर्य ही सदा से इस भूमि पर रह रहे हैं। वे कहीं बाहर से नहीं आए थे।

इन सारे तथ्यों के बावजूद हमारे बच्चों को इतिहास में यह गप्प अब तक पढ़ाया जाता है कि आर्य (हिन्दु) भारतवर्ष में कही बाहर से (ईरान आदि देशों से) आकर बसे थे। इस बात का दुष्परिणाम, अन्य बातों के साथ-साथ, एक यह भी हुआ कि आर्य (हिन्दू) विरोधी मुसलमान आदि लोग आर्यों (हिन्दुओं) से दुर्व्यवहार करते हैं तथा उनकी संस्कृति पर प्रहार करते हैं। 'मुसलिम इंडिया' के मार्च १९८५ के अंक में छपा था :–"If Muslims and Christians are foreigners and must go out

of India, as India's first foreigners the Aryans are duty bound to go out first. Those who came first, must leave first. Most of India's Muslims and Christians are converts from those sons of the soil. They are either Dalits or Tribals........ They are its original inhabitants and hence its rightful owners."

अर्थ–यदि मुसलमान और ईसाई विदेशी हैं और उन्हें भारत छोड़ देना होगा तो आर्यों को भी यह देश छोड़ना होगा। आर्यों को यह देश पहले छोड़ना होगा क्योंकि वे इस देश में पहले आए थे। भारत के अधिकतर मुसलमान और ईसाई यहां के मूल निवासी–दलितों और जनजातियों से बने हैं। इसलिए वे (मुसलमान और ईसाई) ही यहां के (भारत के) असली निवासी हैं और इसके वास्तविक मालिक हैं।

''मुसलिम इंडिया'' के सम्पादक मण्डल में इन्द्रकुमार गुजराल, खुशवन्त सिंह, शाहबुद्दीन, पी.एन. हक्सर, जस्टिस अंसारी सरीखे लोग हैं।

फ्रैंक एन्थनी ने ४ सितम्बर १९७७ को संसद में मांग की थी :–

"Sanskrit should be deleted from the Eighth schedule of the Constitution because it is a foreign language brought to this country by foreign invaders, the Aryans."

अर्थ–संविधान की आठवीं अनुसूची में से संस्कृत भाषा निकाल दी जानी चाहिए क्योंकि यह विदेशी भाषा है जिसे विदेशी आक्रमणकारी आर्य ले आए थे।

अंग्रेजों की गुलामी से देश को स्वतन्त्र हुए ५३ वर्ष बीत चुके हैं। अब तक इस झूठ को छोड़ा क्यों नहीं गया तथा सत्य को अपनाया क्यों नहीं गया ? क्या 'सत्यमेव जयते' को इसी प्रकार झुठलाया जाता रहेगा ?

****

७. गाय, भैंस आदि पशु-वध राष्ट्र घातक है

गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं से हमें दूध, बैल, खाद, चमड़ा आदि जीवनोपयोगी अनेक पदार्थ प्राप्त होते हैं। और इन पदार्थों की हमारे देश में बेहद कमी है।

दूध–गाय, भैंस, बकरी आदि का दूध शरीर को पुष्ट करता है। गाय का दूध बुद्धि को भी बढ़ाता है तथा बहुत से रोगों का भी नाश करता है।

भारतवर्ष में प्रति गाय औसतन वार्षिक दूध उत्पादन तीन सौ दस (३१०) लिटर

है, जबकि इंगलैंड, डेनमार्क, ईजरायल, अमेरिका आदि देशों में यह मात्रा चार हजार पांच सौ (४५००) लिटर है। दूध तथा दूध से बने पदार्थों की दैनिक प्रति व्यक्ति औसतन खपत भारतवर्ष में (दूध की मात्रा में) एक सौ (१००) मिलिलिटर है। पश्चिमी विकसित देशों में यह मात्रा चार लिटर है यानि हमारे से चालीस गुणा अधिक।

हम विदेशों से सूखा दूध तथा घी मंगवा रहे हैं। फिर भी देश की आधी जनता को दूध, घी, दही देखने को भी नहीं मिलता। अगर देश में दूध का उत्पादन अधिक हो जाए तो अनाज भी कम लगे। अनाज कम खाने से मल भी कम बनता है तथा दुर्गन्ध भी कम पैदा होता है। इसलिए रोग भी कम होते हैं।

बैल–भारतवर्ष में खेती के लिए ट्रैक्टरों के साथ-साथ बैलों की भी बहुत आवश्यकता है क्योंकि यहां पर बड़े फार्म कम और छोटे-छोटे खेत अधिक हैं। हमारे देश में अब भी सत्तर प्रतिशत (७० प्रतिशत) खेती बैलों से ही होती है। बैलों का उपयोग गाड़ी में जोतकर अनाज, चारा आदि ढोने में भी होता है।

ट्रैक्टरों के लिए डीजल आदि ईंधन के लिए विदेशों का मुंह ताकना पड़ता है तथा उन्हें मुंह मांगे दाम भी देने पड़ते हैं। केन्द्रीय कृषि यांत्रिक अनुसंधान संस्थान नवीबाग भोपाल ने बैल चालित एक मिनी ट्रैक्टर बनाया है जो वर्तमान हल से दो तीन गुणी जुताई करता है तथा किसान उस पर बैठकर काम कर सकता है।

खाद–पशुओं का गोबर तथा मूत्र खेती के लिए सर्वोत्तम खाद है। ये भूमि को उपजाऊ बनाते हैं। जबकि रासायनिक खाद भूमि को उपजाऊ बनाने वाले जीवांश नहीं देती।

रासायनिक खाद से उत्पन्न अनाज के खाने से कई प्रकार के रोग लगते हैं। न्यूजीलैण्ड में एक परीक्षण किया गया था जिसका विवरण २६ फरवरी, १६४६ के "दैनिक हिन्दुस्तान" में "स्वतन्त्रता रक्षक गौ" शीर्षक से छपा था। न्यूजीलैंड में एक एक सौ एकड़ जमीन के दो खेतों में से एक में गोबर, गोमूत्र आदि खाद और दूसरे में रासायनिक खाद डालकर गेहूं की खेती की गई। उससे जो अन्न तथा भूसा प्राप्त हुआ वह एक एक सौ पुरुष-स्त्री तथा पुरुषों को खिलाया गया। रासायनिक खाद से तैयार हुए अन्न तथा भूसे से मनुष्यों तथा पशुओं को अनेक रोग हुए–विशेषकर मनुष्यों को गले और चमड़ी के रोग तथा पशुओं को खुरों के रोग हुए। परन्तु गोबर, गोमूत्र से उत्पन्न अन्न और भूसे से मनुष्य और पशु निरोग रहे।

गोबर तथा गोमूत्र की खाद की देश में बेहद कमी है। आवश्यकता का केवल अढ़ाई प्रतिशत (२.५ प्रतिशत) ही उपलब्ध है।

चमड़ा—कंकरों, कांटों तथा गर्मी-सर्दी से पांवों को बचाने के लिए चमड़े का जूता सर्वोत्तम है। परन्तु देश में चमड़े की बेहद कमी है। इसके बावजूद चमड़ा विदेशों को भेजा जाता है। सरकार का पूरा जोर लगा हुआ है कि अधिक से अधिक चमड़ा निर्यात हो। फॉरन ट्रेड बुलेटिन के जुलाई १९९४ अंक के पृष्ठ सात पर 'लैदर इण्डस्ट्रीज पोजड फॉर ऐक्सपोर्ट ग्रोथ' लेख में लिखा है कि १९७१-७२ में भारत से विदेशों को एक सौ करोड़ रुपये का चमड़ा निर्यात किया गया था। १९९२-९३ में यह बढ़कर तीन हजार सात सौ करोड़ रुपये अर्थात् सैंतीस गुणा हो गया है। चमड़े का निर्यात भी गोहत्या में बड़ा कारण है। जिस वस्तु की देश में भारी कमी हो उस वस्तु का निर्यात जनता के साथ अन्याय तथा देश के साथ गद्दारी है। इतनी अधिक कि देश की आधी जनता चमड़े का जूता खरीदने में समर्थ नहीं है।

मांस निर्यात—भारत केवल चमड़ा ही निर्यात नहीं करता अपितु मांस भी बड़े पैमाने पर निर्यात कर रहा है और वह भी हलाल पद्धति से तैयार किया हुआ। खाड़ी देशों में साधारण मांस का मूल्य १०० से १२५ रुपये किलोग्राम है, जबकि हलाल पद्धति से तैयार किए गए भारतीय मांस का मूल्य २०० से २५० रुपये किलोग्राम है। पशु की हत्या एक झटके से करने से उसका मांस झटके का मांस कहलाता है। उसके ऊपर एक सफेद परत रहती है किन्तु यदि पशु के गले पर धीरे-धीरे छुरी चलाकर उसे तड़पा कर मारा जाता है तो उसका हीमोग्लोबिन उसके मांस में आ जाता है जिससे मांस का रंग लाल हो जाता है। पशु को मारने की इस क्रूर पद्धति का नाम 'हलाल' है।

बैल तथा भैंसे से निर्धारित से अधिक वजन ढुआना पशुओं के प्रति कूरता निवारण अधिनियम के अन्तर्गत अपराध है किन्तु क्रूरतापूर्वक उसकी हत्या करने में भारत सरकार को कोई अपराध दिखाई नहीं देता।

भारत के स्वतन्त्र होने के समय देश में तीन सौ कत्लखाने थे और अब छत्तीस हजार से अधिक हैं।

यदि पशु वध बन्द कर दिया जाए तथा गाय, भैंस की नसल सुधारी जाए तो देश में दूध, घी, बैल, खाद और चमड़ा की कमी दूर हो सकती है। पशु पालन बड़े अच्छे गृह उद्योग के रूप में अपनाया जा सकता है जिससे बेरोजगारी दूर होने में भी सहायता मिलेगी।

आखिर गाय, भैंस आदि पशु खाते क्या हैं—गेहूँ और चने निकालने के बाद बची तूड़ी, सरसों ओर बिनौलों का तेल निकालने के बाद बची खल, मकई के टांडे, हरी घास, खाद के लिए उगाई गई बरसीम, सब्जी के छिलके आदि—सबके सब ऐसे

पदार्थ जो मनुष्य के लिए किसी काम के नहीं।

लोकमान्य तिलक ने कहा था–"स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पांच मिनट में कलम की नोक से कानून के द्वारा गोहत्या बन्द कर दी जाएगी।" हमारे संविधान के अनुच्छेद ४८ में भी गोहत्या बन्दी सम्बन्धी व्यवस्था है। परन्तु स्वतन्त्रता के त्रेपन वर्ष बीत जाने पर भी इस दिशा में कोई पग नहीं उठाया गया है।

स्वतन्त्रता के पूर्व महात्मा गांधी ने कहा था–"जहां गोहत्या होती है मुझे लगता है मेरी स्वयं की हत्या हो रही है।" परन्तु स्वतन्त्रता के बाद वही महात्मा कहने लगे–"अपने धर्म के आचार विचार को कानून के जरिए दूसरे धर्म के लोगों पर लादना बिल्कुल गलत चीज है।" जिस बात से सारे राष्ट्र को आर्थिक, बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक लाभ पहुँचता हो उस बात को मजहब से जोड़कर नकारा गया।

****

८. मुर्दा जलाना चाहिए, गाड़ना नहीं।

मुर्दा जमीन में गाड़ने से वह भूमि न खेत, न बगीचा और न बसने के काम की रहती है। इस प्रकार लाखों और करोड़ों लोगों को जमीन में दबा दिया जाए तो कितनी भूमि व्यर्थ में रुक जाए। सन्दूक में डालकर गाड़ने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकलकर हवा को बिगाड़ती है जिससे रोग बढ़ते हैं।

उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना है क्योंकि उसको जल जन्तु चीर फाड़ के खा लेते हैं। परन्तु जो कुछ हड्डी और मल बचा रहता है वह सड़कर दुःख कारक होता है। उससे भी थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है क्योंकि उसको मांसाहारी पशु, पक्षी नोच कर खा जाते हैं। फिर भी हड्डी आदि जो कुछ बचा रहता है वह सड़कर दुर्गन्ध फैलाता है जिससे संसार का अहित होता है। मुर्दे को जलाना ही सर्वोत्तम है।

अगर मुर्दे को ठीक ढंग से जलाया जाए तो दुर्गन्ध नहीं होता। ढाक की लकड़ी और उस पर देशी घी की आहुति से मुर्दा जलाया जाए। अगर, तगर, केशर आदि भी डाल सके तो अच्छा है। अगर अकेली लकड़ी से ही मुर्दा जलाया जाए तब भी गाड़ने आदि से बहुत अच्छा है। जलाने से एक वेदी में ही लाखों मुर्दे जलाए जा सकते हैं। कबरों को देखकर डर भी लगता है। इसलिए गाड़ना तो सबसे ज्यादा बुरा है।

देशभक्ति की बात तो यह है कि देश में सब मुर्दे जलाए जाएं। मुर्दे गाड़ने पर कानूनी तौर पर प्रतिबन्ध हो। इस बात को मजहब से न जोड़ा जाए अपितु राष्ट्रहित की बात है इसलिए राष्ट्रीयता से ही जोड़ा जाए।

दाह संस्कार के पश्चात् कर्त्तव्य–मुर्दा जलाने के पश्चात् सब लोग अपने कपड़े धोकर नहा लें। जिस घर में मौत हुई हो उस घर को धोकर साफ कर लें तथा वहां हवन-यज्ञ करें कि जिससे मृतक की गन्दी हवा घर से बाहर निकल जाए तथा शुद्ध हवा आ जाए। उसके पश्चात् तीसरे दिन परिवार का कोई सदस्य शमशान भूमि में जाकर चिता से अस्थियां और राख उठाकर उसी शमशान भूमि में कहीं रख दे या जमीन में गाड़ दे। इसके आगे मृतक के प्रति और कुछ करने का वेदों में विधान नहीं है।

हां, अगर कोई सम्पन्न हो तो जीते जी अपना धन विद्या के प्रचार के लिए या अनाथ बच्चों के पालन आदि के लिए दे सकता है। उसके मरे पीछे उसके सम्बन्धी भी ऐसा कर सकते हैं। परन्तु ध्यान रहे कि जैसे गाय का बछड़ा भागकर अपनी माँ के पास ही जाता है ऐसे ही कर्मफल कर्म करने वाले को ही मिलता है, किसी दूसरे को नहीं। यह वेद का वचन है।

मृत्यु के पश्चात् जीव कुछ देर तक ईश्वर के अधीन बिना स्थूल शरीर के रहता है। उस अवस्था में जीव का संसार से तथा सांसारिक पदार्थों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। ऐसी स्थिति में उसके लिए उसके पहले के सम्बन्धी कुछ भी करें उसको कोई लाभ नहीं होता। फिर ईश्वर जीव को उसके कर्मों के अनुसार उचित स्थान पर गर्भाशय में भेजता है। तब उसे नए माता पिता आदि मिलते हैं।

****

अध्याय ५

प्राणायाम तथा योग विषय

१. प्राणायाम

(महर्षि दयानन्द के शब्दों में)

प्राण अर्थात् श्वास और आयाम अर्थात् लम्बाई, तात्पर्य– श्वास की लम्बाई को 'प्राणायाम' कहते हैं।

प्राणायाम करने की विधि--आचमन कर दोनों हाथ धो, कान, आंख, नासिका आदि का शुद्ध जल से स्पर्श करके, शुद्ध देश (स्थान) पवित्र आसन पर जिधर की ओर का वायु हो उधर को मुख करके (बैठकर) नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके, हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल के यथाशक्ति रोके। पश्चात् धीरे-धीरे भीतर लेके भीतर थोड़ा सा रोके, यह एक प्राणायाम हुआ।......इस रीति से कम से कम तीन और अधिक से अधिक इक्कीस प्राणायाम करे।.........नासिका को हाथ से कभी न पकड़े, किन्तु ज्ञान से ही उसके रोकने को प्राणायाम कहते हैं।.... मन में "ओ३म्" इसका जाप करता जाए। इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है।

प्राणायाम के चार प्रकार–एक "बाह्यविषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाए उतना रोकना। तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही बार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाए। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुक कर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियाँ स्वाधीन होती हैं।

प्राणायाम के लाभ--जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रति क्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण

करती है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।

तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्ण (सोना) आदि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।

उपनिषदों के अनुसार–प्राण का मन और इन्द्रियों में मधुमक्खियों की रानी के समान व्यवहार है। जैसे मधुमक्खियां रानी मधुमक्खी के पीछे चलती है ऐसे ही मन, और इन्द्रियां प्राण के पीछे चलती है।

****

२. योग अथवा उपासना योग

(महर्षि दयानन्द कृत 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के आधार पर)

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (योगदर्शन)

अर्थ–चित्त की वृत्तियों को सब बुराईयों से हटा के शुभ गुणों में स्थिर करके, परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं। और वियोग उसको कहते हैं कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध बुराईयों में फंस के उससे दूर हो जाना।

चित्त की वृत्ति को रोकने के उपाय–(एक) जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से दृढ़ बांध के रोक देते हैं तब वह जिस ओर नीचा होता है उस ओर चल के कहीं स्थिर हो जाता है। (दूसरा) उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्दयुक्त रहती है और संसार के मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष शोक रूप दुःखसागर में ही डूबी रहती है। उपासक योगी की वृत्ति तो ज्ञानरूप प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अन्धकार में फंसती जाती है।

योगदर्शन के अनुसार उपासना योग के आठ अंग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

१. यम–पांच प्रकार का है। अहिंसा–सब प्रकार से, सब काल में, सब प्राणियों के साथ बैर भाव छोड़ के प्रेम से वर्तना। सत्य–जैसा अपने ज्ञान में हो वैसा ही सत्य बोले, करे और माने। अस्तेय–स्वामी की आज्ञा के बिना किसी के पदार्थ की इच्छा

भी न करना इसे चोरी त्याग कहते हैं। ब्रह्मचर्य–वीर्य रक्षा, जितेन्द्रिय होना, परस्त्री, वेश्या आदि का त्याग, ऋतुगामी होना। अपरिग्रह–अत्यन्त लोलुपता का त्याग, आवश्यकता से अधिक पदार्थ अपने पास न रखना।

२. **नियम**–पांच प्रकार का है। शौच–पवित्रता करनी, सो भी दो प्रकार की है। एक भीतर की और दूसरी बाहर की। भीतर की शुद्धि धर्माचरण, सत्यभाषण, विद्याभ्यास, सत्संग आदि शुभ गुणों के आचरण से और बाहर की पवित्रता जल आदि से शरीर, स्थान, मार्ग, वस्त्र, खाना-पीना आदि शुद्ध करने से होती है। सन्तोष-ईमानदारी से पूरी मेहनत करके प्रसन्न रहना और दुःख में दुःखी न होना, किन्तु आलस्य का नाम सन्तोष नहीं। तप–जैसे सोने को अग्नि में तपा के निर्मल कर देते हैं वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरण और शुभ गुणों के आचरण रूप तप से निर्मल कर देना। स्वाध्याय–वेद आदि सत्य शास्त्रों का अध्ययन और मनन। ईश्वर प्रणिधान–सब सामर्थ्य, सब गुण, प्राण, आत्मा और मन के प्रेमभाव से आत्मा आदि सत्य द्रव्यों का ईश्वर के लिए समर्पण करना।

३. **आसन**–जिसमें सुख से बैठकर ईश्वर से योग हो सके अर्थात् जिसमें सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो उसको आसन कहते हैं। अथवा जैसे रुचि हो वैसा आसन करें। जब आसन दृढ़ होता है तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता है, न सर्दी गर्मी अधिक बाधा करती है।

४. **प्राणायाम**–'प्राणायाम' विषय देख लेवें।

५. **प्रत्याहार**–उसका नाम है कि जब पुरुष अपने मन को जीत लेता है तब इन्द्रियों का जीतना अपने आप हो जाता है क्योंकि मन ही इन्द्रियों का चलाने वाला है तब वह मनुष्य जितेन्द्रिय होके जहां अपने मन को ठहराना वा चलाना चाहे उसी में ठहरा और चला सकता है। फिर उसको ज्ञान हो जाने से सदा सत्य में ही प्रीति हो जाती है, असत्य में कभी नहीं।

६. **धारणा**–उसको कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ा के नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर करके ओंकार का जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है उसका विचार करना।

७. **ध्यान**–धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करके और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है उसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना।

८. समाधि–जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्निरूप हो जाता है इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय हो के, अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जान के आत्मा को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं। ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला जिस मन से जिस चीज का ध्यान करता है वे तीनों विद्यमान रहते हैं। परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्दस्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है। वहां तीनों का भेदभाव नहीं रहता। जैसे मनुष्य जल में डुबकी मारके थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न होके फिर बाहर आता है।

जिस देश में धारणा की जाए उसी में ध्यान और उसी में समाधि अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में मग्न हो जाने को संयम कहते हैं। जो एक ही काल में तीनों का मेल होता है अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है। उनमें बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है। परन्तु जब समाधि होती है तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है।

यह उपासनायोग दुष्ट मनुष्य को सिद्ध नहीं होता क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कामों से अलग होकर अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं करता तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता तब तक कितना ही पढ़े वा सुने उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

महात्मा नारायण स्वामी लिखते हैं–महर्षि कपिल के अनुसार मन के खाली (निर्विषय) कर देने को ध्यान कहते हैं। मन को खाली करने का अभिप्राय यह है कि मन का इन्द्रियों से काम लेना–जिससे जागृत अवस्था बनती है–छूट जावे तथा मन का अपने भीतर काम करना भी–जिससे स्वप्नावस्था बनती है–बन्द हो जावे। अर्थात् मनुष्य की जागृत अवस्था में ही सुषुप्ति की हालत हो जाने को मन का खाली हो जाना कहते हैं।

****

अध्याय ६

सृष्टि विषय

१. सृष्टि-उत्पत्ति

(महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों के आधार पर)

सृष्टि की सारी आयु (जो बीत चुकी है तथा जो बाकी है) चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष है। फिर उतना ही समय प्रलय का होगा। सृष्टि के पश्चात् प्रलय और प्रलय के पश्चात् सृष्टि दिन और रात के रूप में हमेशा चला आ रहा है तथा चलता रहेगा। इसका कोई आरम्भ या अन्त नहीं है। प्रलय के समय प्रकृति परम सूक्ष्म परमाणुओं के रूप में होती है। सृष्टि रचना के समय परमात्मा उनको बुद्धिपूर्वक मिलाता है। सृष्टि की रचना करना, सृष्टि को धारण करना तथा फिर समय आने पर प्रलय करना यह सब सर्व सामर्थ्यवान् पूर्ण ज्ञानवान् परमेश्वर का ही काम है। परमेश्वर अपने सामर्थ्य को सार्थक करने के लिए तथा जीवों को उनके कर्मों के अनुसार यथायोग्य फल देने के लिए ही सृष्टि की रचना करता है।

जगत् के बनने में तीन कारण हैं। (एक) निमित्त कारण–जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने और आप स्वयं बने नहीं, दूसरे को बना देवे। निमित्त कारण दो प्रकार के हैं (क) सब सृष्टि को बनाने वाला, धारणकर सब की व्यवस्था करने वाला तथा प्रलय करने वाला परमात्मा (ख) परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर कार्य करने वाला जीवात्मा। (दूसरा)उपादान कारण–जिसके बिना कुछ न बने, वही रूप बदले, बने और बिगड़े भी। यह प्रकृति ही सब संसार के बनाने की सामग्री है। यह जड़ होने से अपने आप न बन और न बिगड़ सकती है, किन्तु दूसरे के बनाने से बनती है और बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ जाता है। जैसे परमेश्वर के बनाए बीज पृथिवी में गिरने ओर जल पड़ने से वृक्ष बन जाते हैं और अग्नि आदि के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं। परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना और बिगड़ना परमेश्वर और जीव के अधीन है। (तीसरा) साधारण कारण–जो बनाने में साधन हो ज्ञान, प्रकाश, समय आदि।

सृष्टि रचना का क्रम–सर्वत्र फैले हुए परमाणुओं को इकट्ठा करके जो खाली

स्थान बचा वह आकाश है। आकाश की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि बिना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सकें। फिर वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, औषधियां, अन्न, वीर्य तथा शरीर क्रमशः बनते हैं। पशु, पक्षी आदि सब कुछ बन जाने के पश्चात् मनुष्य की उत्पत्ति होती है। मनुष्य और वेद की उत्पत्ति को १, ६६,०८,५३,१०१ वर्ष हो चुके हैं। मनुष्य की प्रथम उत्पत्ति के दिन का नाम चैत्र मास का शुक्ल पक्ष (१) प्रतिपदा रखा गया। अतः सृष्टि संवत् तथा विक्रमी संवत् एक ही दिन आरम्भ होते हैं।

महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं–सब से सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो कोटा नहीं जा सकता उसका नाम परमाणु है। साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु है, दो अणु का वायु, छः अणु का अग्नि, आठ अणु का जल, दस अणु की पृथ्वी होती है।

आरम्भ में ईश्वर ने अनेक पुरुष स्त्रियों के शरीर बनाकर उनमें जीव डालकर अमैथुनी सृष्टि की रचना की। ये सभी युवावस्था में उत्पन्न हुए। फिर मैथुनी सृष्टि चल पड़ी। मनुष्यों की आदि सृष्टि 'त्रिविष्टप' जिसे तिब्बत कहते हैं वहां हुई और कहीं नहीं। उसी समय ईश्वर ने चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा को चारों वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का ज्ञान दिया। इन ऋषियों ने वह वेद ज्ञान ब्रह्मा ऋषि को तथा अन्यों को दिया। उस समय वहां पर केवल दो प्रकार के मनुष्य थे। (एक) आर्य–श्रेष्ठ, धार्मिक, विद्वान्। (दूसरे) दस्यु–अनार्य या अनाड़ी। जब तिब्बत में जनसंख्या बहुत बढ़ गई तब बहुत से आर्य लोग वहां से चल के आर्यावर्त्त में आकर बसे। इस देश का नाम 'आर्यावर्त्त' उनके आने से ही पड़ा। इससे पूर्व यहां कोई और नहीं रहता था तथा न ही इसका कोई और नाम था। इस देश का नाम भारतवर्ष भी बहुत बाद में भरत नामी प्रतापी राजा के नाम पर पड़ गया था। उसके पश्चात् मनुष्य धीरे-धीरे संसार के अन्य स्थानों में गए।

****

२. सृष्टि संवत्

(महर्षि दयानन्द रचित 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के आधार पर)

वर्तमान सृष्टि में मनुष्य को उत्पन्न हुए सितम्बर २००० में १,६६,०८,५३,१०१ वां वर्ष चल रहा है। यही संवत् वेदोत्पत्ति का है अर्थात् इतने ही वर्ष वेदों को उत्पन्न हुए हो गए हैं। समय की यह गणना ज्योतिष (गणित) के अनुसार है। सृष्टि उत्पत्ति से

लेकर आज पर्यन्त आर्य लोग एक एक दिन गिनते आ रहे हैं। अब भी विवाह आदि प्रत्येक शुभ कर्म के आरम्भ में पुरोहित जो संकल्प पढ़ता है वह सृष्टि संवत् आदि का ही द्योतक है।

ओ३म्तत्सत् अद्य श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धसप्तमेवैवस्वत मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथमचरणेऽमुकसंवत्सरायनर्तुमासे पक्षे.....दिने....नक्षत्रे.....लग्ने मुहूर्त्ते जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशेऽत्रेदं कार्यं क्रियते अर्थात् ब्राह्मदिन के दोपहर के निकट का समय है। वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। जितने वर्ष वैवस्वत मन्वन्तर के बाकी हैं उतने ही वर्ष दोपहर में बाकी हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाईसवें कलियुग का प्रथम चरण व्यतीत हो रहा है। अर्थात् इस सातवें मन्वन्तर की सत्ताईस चतुर्युगियां व्यतीत हो चुकी हैं। अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के सत्, त्रेता, द्वापर युग बीत चुके हैं। कलियुग में ५१०० वर्ष बीत चुके हैं। आगे बीत रहे वर्ष का मास, दिन, समय आदि बताकर यह बताया गया है कि जम्बूदीप के भरतखण्ड में आर्यावर्त्त देश में यह शुभ कार्य किया जा रहा है।

समय की यह गणना इस प्रकार है। एक सृष्टि काल में चौदह मन्वन्तर भोग के होते हैं। छः मन्वन्तर बीत चुके हैं, यह सातवां चल रहा है। प्रत्येक मन्वन्तर में एकहत्तर चतुर्युगियों का समय है।

एक चतुर्युगी में चार युग हैं।

सतयुग में	१७,२८,००० वर्ष
त्रेतायुग में	१२,९६,००० वर्ष
द्वापरयुग में	८,६४,००० वर्ष
कलियुग में	४,३२,००० वर्ष
एक चतुर्युगी में कुल	४३,२०,००० वर्ष

वर्तमान सृष्टि संवत् :

बीत चुके छः मन्वन्तर =

४३,२०,००० × ७१ × ६ = १,८४,०३,२०,००० वर्ष

सातवें मन्वन्तर के बीते वर्ष

सत्ताईस चतुर्युगियां = ४३,२०,००० × २७ = ११,६६,४०,००० वर्ष

बीती अट्ठाईसवीं चतुर्युगी

सतयुग–	१७,२८,००० वर्ष
त्रेतायुग–	१२,९६,००० वर्ष

द्वापरयुग–	८,६४,००० वर्ष
कलियुग–	५,१०० वर्ष
जोड़	३८,६३,१०० वर्ष

अतः कुल बीते वर्ष = १,९६,०८,५३,१०० वर्ष

इस प्रकार अब १,९६,०८,५३,१०१वां वर्ष बीत रहा है जिसे २०५७ विक्रमी संवत् कहते हैं।

ऊपर बताए चौदह मन्वन्तर यानि १४ × ७१ = ९९४ चतुर्युगी का समय सृष्टि में मनुष्यों का भोग काल है। वास्तव में सृष्टि का काल एक हजार चतुर्युगी का है। शेष रहा छः चतुर्युगी का समय सृष्टि की रचना करने में व्यतीत होता है। यह १००० चतुर्युगी का समय ब्राह्मदिन कहलाता है। इतना ही समय प्रलय में व्यतीत होता है अर्थात् सृष्टि नहीं रहती। उसे ब्राह्मरात्रि कहते हैं। इस प्रकार ब्राह्मदिन के पश्चात् ब्राह्मरात्रि और ब्राह्मरात्रि के पश्चात् ब्राह्मदिन निरन्तर चलते रहते हैं। यही क्रम सदा से चला आ रहा है।

सृष्टि उत्पत्ति से लेकर अब तक आर्य लोग परम्परा से इसी प्रकार अपने बहीखातों में तथा तिथि पत्रों में दिन, मास, वर्ष आदि लिखते तथा बढ़ाते घटाते आ रहे हैं। वैदिक संस्कृति की सभी प्राचीन पुस्तकों में इसी प्रकार का लेख पाया जाता है। उनमें इस विषय में कहीं भी विरोध नहीं है। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण ही यह सृष्टि संवत् सही सही ज्ञात है।

****

अध्याय ७

वैदिक व्यवस्थाएँ

१. वैदिक राजधर्म

'राजधर्म' का अर्थ है राजा अर्थात् शासक का कर्त्तव्य यानि राजवर्ग को देश का संचालन कैसे करना है, इस विद्या का नाम ही 'राजधर्म' है। राजधर्म की शिक्षा के मूल वेद हैं। मनुस्मृति, शुक्रनीति, महाभारत के विदुर प्रजागर तथा शान्तिपर्व आदि में भी राजधर्म की बहुत सी व्याख्या है। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी 'सत्यार्थ प्रकाश' में एक पूरा समुल्लास राजधर्म पर लिखा है। इस लेख में इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर राजधर्म का वर्णन किया जाएगा। वह सब वेद अनुकूल होने से इस विषय का नाम 'वैदिक राजधर्म' रखा गया है।

१. लूटने वाला हमारा शासक न हो-

ओ३म् रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुशंस ईशत।
मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत॥ (अथर्ववेद)

अर्थ–हे ईश्वर ! आप हमारी रक्षा करें। कोई भी दुष्ट दुराचारी अन्यायकारी हम पर शासन न करे। हमारी वाणी पर पाबन्दी लगाने वाला, हम किसानों से हमारी भूमि छीनने वला तथा हम पशु पालकों से हमारे गौ आदि पशु छीनने वाला व्यक्ति हमारा शासक न बने। भेड़िया बकरियों का राजा न हो।

२. तानाशाह प्रजा का नाशक होता है–

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः।
विशमेव राष्ट्रावाद्यां करोति
तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं मन्यत इति॥ (शतपथ ब्राह्मण)

अर्थ–यदि राजवर्ग पर प्रजा का नियन्त्रण न रहे तो राजवर्ग प्रजा का ऐसे नाश कर देता है जैसे जंगल में शेर सभी हृष्ट पुष्ट पशुओं को मारकर खा जाता है। इसलिए किसी एक को स्वतन्त्र शासन का अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए।

राजा कौन ? वैदिक ग्रन्थों में सभापति को ही राजा (राष्ट्रपति) कहा गया है। यह राजा या सभापति कोई खानदानी नहीं होता अपितु प्रजा द्वारा चुना हुआ ही होता

है। शास्त्रों में ऐसा बताया गया है कि राजा के ऊपर सभा का नियंत्रण, सभा के ऊपर राजा का, प्रजा के ऊपर सभा का तथा राजा और सभा दोनों के ऊपर प्रजा का नियन्त्रण रहना चाहिए।

३. सचिव कैसे और कितने हों–

मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्ष्यान् कुलोद् गतान्।
सचिवान् सप्त च अष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–अपने देश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के विद्वान्, जिनमें अपने लक्ष्य तक पहुँचने की योग्यता हो और जो सदाचारी परिवार से सम्बन्ध रखते हों, अच्छी प्रकार परीक्षा करके ऐसे सात या आठ सचिव रखे जाएं।

४. शासक प्रजा की रक्षा कैसे करे–

यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–जैसे धान से चावल निकालने वला छिलके को अलग कर चावलों की रक्षा करता है, चावलों को टूटने नहीं देता। वैसे ही राजा रिश्वतखोरों, अन्यायकारियों, चोर बाजारी करने वालों, डाकुओं, चोरों और बलात्कारियों को मारे और बाकी प्रजा की रक्षा करे।

यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोऽनुगम्।
गर्भस्य हितमाधत्ते तथा राजाप्यसंशयम्॥ (महाभारत-शान्तिपर्व)

अर्थ–राजा को गर्भिणी के समान वर्तना चाहिए। जिस प्राकर गर्भिणी अपना हित त्याग गर्भ की रक्षा करती है उसी प्रकार राजा को अपना हित त्याग सदा प्रजा के हित का ही ध्यान रखना चाहिए।

५. वैदिक दण्ड व्यवस्था–

कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक रुपया दण्ड हो उसी अपराध में राजा पर हजार रुपया दण्ड होना चाहिए।

६. रिश्वत लेने वालों को दण्ड–

ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम्॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–जो न्यायाधीश वादी या प्रतिवादी से रिश्वत लेकर के पक्षपात से अन्याय

करे उसकी सारी सम्पत्ति जब्त करके उसे कहीं दूर भेज दिया जाए।

७. कर लेने का ढंग–

यथाऽल्पाऽल्पमदन्त्याद्यं वार्योकोवत्सषट्पदाः।

तथाऽल्पाऽल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–जैसे जोंक, बछड़ा और भौंरा थोड़े-थोड़े भोज्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं। वैसे राजा प्रजा से थोड़ा थोड़ा वार्षिक कर लेवे।

८. सभा में सभासदों का कर्त्तव्य–

सभा वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वासमञ्जसम्।

अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–मनुष्य को चाहिए कि वह सभा में जाकर सत्य ही बोले। जो कोई सभा में अन्याय होते को देखकर चुप रहे या सत्य और न्याय के विरुद्ध न बोले वह महापापी होता है।

यत्र धर्मो हि अधर्मेण सत्यं यत्र अनृतेन च।

हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥ (मनुस्मृति)

अर्थ–जिस सभा में अधर्म से धर्म यानि अन्याय से न्याय और असत्य से सत्य सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है, उस सभा में सब मुर्दे के समान हैं।

९. यथा राजा तथा प्रजा–

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः।

राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः॥ (चाणक्यनीति)

अर्थ–यदि राजा यानि शासकवर्ग सदाचारी और न्यायकारी होंगे तो प्रजा भी सदाचारी और न्यायकारी बन जाती है। यदि शासकवर्ग दुराचारी हो तो प्रजा भी दुराचारी बन जाती है। प्रजा तो अपने शासकों के पीछे ही चलती है।

आम लोग राजा के कृपापात्र बनने की इच्छा से वैसा ही आचरण करते हैं जैसा राजा करता है। इसलिए शासक वर्ग के लिए आवश्यक है कि वे दुराचार कभी न करें। सदा सत्य और न्याय पर चलते हुए प्रजा के आगे उत्तम दृष्टान्त बनें।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेव इतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥ (गीता)

अर्थ–समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति जैसा व्यवहार करते हैं दूसरे लोग भी वैसा ही करते हैं। वे लोगों के सामने जैसा उदाहरण रखते हैं लोग उसका अनुसरण करते हैं।

१०. राष्ट्रीय प्रार्थना–

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्
आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी
महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः
सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्
निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो
नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।। (यजुर्वेद)

भाषानुवाद–

ब्राह्मण स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी।।
होवें दुधारु गौएं, पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही।।
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान् पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें।।
फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी।।

अर्थ–हे सब से महान् प्रभु ! आपसे प्रार्थना है कि हमारे देश में सब सत्य विद्याओं के ज्ञाता विद्वान् हों जिनके पुरुषार्थ से अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि होती रहे। राष्ट्र के शत्रुओं को मारने में समर्थ शूरवीर क्षत्रिय उत्पन्न हों। दूध, घी, अन्न, सब्जियों और फलों की देश में भरमार हो। बैल, घोड़ा, गाड़ी आदि की सुविधाएं सदा बनी रहें। राष्ट्र की महिलाएं सन्तान के धारण तथा पालन पोषण में समर्थ रहें। जब जब आवश्यकता हो वर्षा हुआ करे। अतिवृष्टि (वर्षा का बहुत अधिक हो जाना) और अनावृष्टि (वर्षा बिल्कुल न होना) कभी न हो। देशवासियों का सदा कल्याण हो। सभी आनन्द से रहें। कोई भूखा, प्यासा, नंगा और दरिद्र न रहे। देश से अज्ञान, अन्याय और अभाव का नाश हो।

****

२. वैदिक अर्थ व्यवस्था

हमारा मूल मन्त्र हो कि मेहनत करने वाला कोई गरीब न हो–मेहनत चाहे

शारीरिक हो या बौद्धिक। कष्टदायक आर्थिक विषमता न हो। किसी के पास धन की इतनी कमी न हो कि उसका विकास रुक जाए और न ही किसी के पास धन इतना अधिक हो कि वह अय्याश (विषयी तथा आलसी) बन जाए।

न वा उ देवाः क्षुधामिद् वधं ददुः। (ऋग्वेद)

अर्थ–देश में कोई भी भूखा प्यासा न रहे।

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः। (अथर्ववेद)

अर्थ–सभी मिलकर खाएं पीएं। अर्थात् भौतिक आवश्यकताएं सभी की समान रूप से पूरी हों।

केवलाघो भवति केवलादी। (ऋग्वेद)

अर्थ–अन्य लोगों के भूखे रहते जो केवल अपना पेट भरता है वह पाप और अन्याय करता है।

महर्षि मनु ने लिखा है कि गृहस्थी स्त्री पुरुष बाहर से आए हुओं को तथा अपने पर आश्रितों को पहले भोजन करवा के फिर स्वयं भोजन करें। ऐसा भोजन उनके लिए अमृत समान होता है।

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः॥ (विदुरनीति)

जो अपने द्वारा भरण पोषण के योग्य व्यक्तियों को बांटे बिना अकेला ही उत्तम भोजन करता है और अच्छा वस्त्र पहनता है उससे बढ़कर क्रूर और कौन होगा ?

स्वजनं तर्पयित्वा यः शेषभोजी सोऽमृतभोजी। (चाणक्य सूत्र)

अर्थ–जो अपने लोगों को तृप्त करने के बाद बचा हुआ अन्न खाता है वह अमृत भोजन करता है।

असुराः स्वेष्वेवास्येषु जुह्वति अन्योऽन्यस्मिन् हऽवै देवाः। (शतपथ ब्राह्मण)

अर्थ–औरों के भूखे रहते अकेले खाना राक्षसवृत्ति है। सबके साथ बांट करके खाना सज्जनता है।

शास्त्र ने चेतावनी दी है कि यदि कुछ लोग भूखे रहते हैं और उनकी भौतिक आवश्यकताएं पूरी नहीं होती तो समाज में दुःख और दुराचार बढ़ जाता है।

बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्।
क्षीणाः नरा निष्करुणा भवन्ति॥ (पंचतन्त्र)

अर्थ–भूखा आदमी कौन सा पाप नहीं कर सकता अर्थात् बड़े से बड़े अपराध भी वह कर सकता है। जब पेट में अन्न न पड़े तो बड़े से बड़े महापुरुषों का धैर्य

भी डांवाडोल हो जाता है।

आचार्य चाणक्य ने लिखा है–

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्तु अबान्धवाः।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या दरिद्रता॥

अर्थ–सन्तान हीन मनुष्य को अपना घर सूना लगता है। जिस मनुष्य के सम्बन्धी वा मित्र न हों उसे घर से बाहर सूना सूना लगता है। ज्ञान हीन मनुष्य का हृदय सूना रहता है, परन्तु गरीब के लिए तो सब कुछ ही सूना सूना रहता है।

परोऽपेह्यासमृद्धे वि ते हेतिं नयामसि।
वेद त्वाहं निमीवन्तीं नितुदन्तीमराते॥ (अथर्ववेद)

अर्थ–ओ दरिद्रता ! तू दूर जा, परे भाग जा। हम तेरे ऊपर वज्र से प्रहार करते हैं। हम जानते हैं कि तू सब प्रकार से निर्बल करने वाली है और नाना प्रकार से पीड़ा देने वाली है। अतः सरकार और समाज की यह सर्वप्रथम जिम्मेदारी है कि राष्ट्र से गरीबी और अभाव को दूर रखें।

****

३. वर्ण व्यवस्था और जातपात

महर्षि मनु द्वारा रचित पुस्तक मनुस्मृति में वर्ण व्यवस्था का वर्णन मिलता है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार अपना रोजगार चुनने का अधिकार है। यह व्यवसाय अपने पिता वाला हो सकता है और उससे भिन्न भी। यही वर्ण व्यवस्था है। वर्ण संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'चुनना'।

समाज की तमाम समस्याओं को तीन मुख्य भागों में बांटा गया है–अज्ञान, अन्याय, अभाव। अज्ञान–लोगों का अनपढ़ वा मूर्ख होना। अन्याय–पक्षपात वा रिश्वत से अन्याय होना। अभाव–आवश्यकता के पदार्थों की कमी होना या वितरण ठीक न होना। इन तीनों समस्याओं को हल करने की जो लोग योग्यता रखते थे तथा जिम्मेदारी लेते थे वे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कहलाते थे। इन तीनों शब्दों के अर्थ भी उनके कार्य के अनुरूप ही हैं। ब्राह्मण-विद्वान्, क्षत्रिय-रक्षक, वैश्य-उत्पादक और विभाजक। बाकी रहे शूद्र-अनपढ़ तथा मूर्ख। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सहायता करते थे। स्मरण रहे कि इस व्यवस्था का नाम वर्ण व्यवस्था है, जन्ममूलक जात पात नहीं।

समस्या तब पैदा हुई जब ब्राह्मण के बेटे को ब्राह्मण ही माना जाने लगा बेशक

उसके गुण, कर्म, स्वभाव ब्राह्मण के नहीं थे। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की सन्तान को भी क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही माना गया चाहे उनमें ये गुण न हों। क्या यह गलत बात नहीं है ? यह तो ऐसी बात है कि डॉक्टर के बेटे को डाक्टर और मास्टर जी के बेटे को मास्टर माना जाए चाहे वे कम्पाउण्डर और चपरासी की योग्यता भी न रखते हों।

सम्भवतः समस्या गम्भीर तब हुई जब घरों से दूसरे का मल उठाकर के बाहर ले जाने की प्रथा देश में चली। मानना पड़ेगा कि दूसरों का मल उठाने का धन्धा भारतीय (वैदिक) संस्कृति और समाज की मूल धारा के विरुद्ध है। भारतीय इतिहास में कहीं भी घरों में ऐसे शौचालयों, जहां से मल उठाके बाहर ले जाना पड़े, का जिक्र नहीं मिलता। और शौच के लिए बाहर जंगल में जाया जाता था। मेहत्तर आदि शब्द संस्कृत भाषा के नहीं हैं। अतः सम्भव है कि यह कुप्रथा कुछ सदियों पहले की मुसलमानों की देन हो। छुआछूत तथा परस्पर घृणा इसी से आरम्भ हुई लगती है।

ऊपर बताई इन दोनों गलत प्रथाओं के चलने से वर्ण व्यवस्था वर्तमान जन्म मूलक जातपात में बदल गई है। निस्सन्देह इस जातपात का मनुस्मृति में कहीं कोई वर्णन नहीं है। न ही इसका तालमेल वैदिक संस्कृति या मानवता से है। वेद तो ऐसा मानता है :–

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय। (ऋग्वेद)

अर्थ–हममें से कोई छोटा या बड़ा नहीं है। हम सब आपस में भाई भाई हैं। हम सबको मिल करके समृद्धि के लिए काम करना चाहिए।

वैदिक धर्म के अनुसार हम सब की एक ही जाति है–मनुष्य जाति। कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, गधा, गाय, भैंस, कबूतर, कौआ आदि ये सब अलग अलग जातियां हैं। जाति शब्द का अर्थ है जो जन्म से लक्षित हो।

भारत की स्वतन्त्रता के बाद जातपात समाप्त करने के नाम पर नए नाम देकर तथा उन नामों के साथ आर्थिक लाभ जोड़कर जातपात की दीवार को और दृढ़ कर दिया गया है। जातपात के रोग को समाप्त करने के लिए आवश्यक होगा कि कभी भी किसी की भी जाति न पूछी जाए–न बच्चों से, न बड़ों से, न सरकारी तौर पर, न गैर सरकारी तौर पर। किसी फार्म पर भी कहीं भी जाति का खाना न रखा जाए। स्कूलों और कालेजों की पाठ्य पुस्तकों में भी कहीं भी जात पात पर आधारित कोई कहानी या लेख न हों। इस व्यवस्था में सभी बच्चे जातपात के भेदभाव के बिना ही बड़े होंगे। जिससे उनमें समानता की भावना ‌नी रहेगी।

विशेष ज्ञातव्य–जितना आवश्यक जातपात को समाप्त करना है उतना ही

आवश्यक गोत्र की रक्षा करना है। गोत्र को भी जातपात के साथ ही समाप्त कर देना ऐसा है कि जैसे नाक पर बैठी मक्खी को उठाने के लिए नाक को काट डालना। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मनुस्मृति के हवाले से लिखा है–जो कन्या माताकुल की छः पीढ़ियों में से न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से विवाह करना उचित है। इससे विलक्षणता आती है। जैसे पानी में पानी मिलाने से विलक्षण गुण नहीं होता वैसे पिता के गोत्र या माता के कुल में विवाह होने से धातुओं के अदल बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती। जैसे दूध में मिश्री और सौंठ आदि औषधियों के मिलाने से उत्तमता होती है वैसे ही पिता से भिन्न गोत्र तथा माता के कुल से पृथक् स्त्री पुरुष का विवाह होना उत्तम है।

****

४. वेद वाणी

ओ३म् भूर्भुवः स्वः।
तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (यजुर्वेद)

भावार्थ–सर्वत्र व्यापक, सबके रक्षक, परमपिता परमात्मा से हम प्रार्थना करते हैं कि वह हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर लगाए अर्थात् हम ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे हमारी बुद्धि निर्मल तथा तीव्र बने।

२. **ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव।**
यद्भद्रं तन्न आ सुव॥ (यजुर्वेद)

अर्थ–हे संसार को उत्पन्न करने वाले सब सुखों के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सब दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये तथा जो कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वे सब हम को प्राप्त कीजिए।

३. **सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।**
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ (ऋग्वेद)

अर्थ–ऐ ऐश्वर्य के अभिलाषी मनुष्यों ! तुम सब आपस में मिलकर चलो, मिलकर रहो, प्रेम से बातचीत करो, तुम सब एक दूसरे से मन मिलाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार पहले हुए विद्वान् पुरुष मिलकर एक दूसरे के सहयोग से अनेक प्रकार का ज्ञान प्राप्त करते हुए ऐश्वर्य और उन्नति को प्राप्त करते थे वैसे ही तुम भी करो।

४. समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः
समानेन वो हविषा जुहोमि॥

अर्थ—हमारे विचार समान हों हमारे लक्ष्य समान हों, हमारे संकल्प समान हों, हमारी आकांक्षाएं समान हों और हम एक जुट होकर आगे बढ़ें।

५. सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्याः॥ (अथर्ववेद)

अर्थ—सभी मनुष्य एक हृदय वाले तथा एक मन वाले हों। कोई भी किसी से द्वेष न करे। सभी एक दूसरे को ऐसे चाहें जैसे गौ अपने नये उत्पन्न हुए बछड़े को चाहती हैं।

६. स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ (ऋग्वेद)

अर्थ—हम सूर्य और चन्द्र की तरह कल्याणकारी मार्ग पर चलते रहें और परोपकारी, दानशील, बैर भाव रहित विद्वान् मनुष्यों की संगति करते रहें।

७. असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय॥ (बृहदारण्यक उपनिषद्)

हे ईश्वर ! आप हमको असत् (गलत) मार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर ले चलिए। अविद्या अंधकार को छुड़ाकर विद्या रूप सूर्य को प्राप्त कीजिए और मृत्यु रोग से बचा करके मोक्ष के आनन्द रूप अमृत को दीजिए।

८. तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽसि ओजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि।

हे प्रभु ! आप प्रकाश स्वरूप हैं कृपा कर मुझ में भी प्रकाश स्थापना कीजिए। आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं मुझ में भी पराक्रम दीजिए। आप अनन्त बलवान बलयुक्त हैं मुझे भी बल प्रदान कीजिए। आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं मुझ को भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिए। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं मुझ को भी वैसा ही कीजिए। आप निन्दा, स्तुति और स्वअपराधियों को सहन करने वाले हैं कृपा कर मुझ को भी वैसा ही कीजिए।

९. **ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।**
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।। (यजुर्वेद)

अर्थ–इस गतिशील संसार में जो कुछ भी है ईश्वर उस सब में बसा हुआ है। इसलिए वह हमें सब ओर से देखता है। यह जानकर तथा उससे डर कर दूसरे के पदार्थों को अन्याय से लेने की कभी भी इच्छा मत कर। अन्याय के त्याग और न्यायाचरण रूप धर्म से आनन्द को भोग।

१०. **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।**
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। (यजुर्वेद)

अर्थ–संसार में मनुष्य शुभ कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे। ऐसा करने से वह बुरे कामों में नहीं फंसता। संसार में सुखपूर्वक जीने का यही एक तरीका है, और कोई भी रास्ता ठीक नहीं है।

११. **असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।**
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।। (यजुर्वेद)

अर्थ–जो मनुष्य आत्मा में और वाणी में तथा कर्म में कुछ और ही करते हैं वे असुर, दैत्य, राक्षस एवं दुष्ट हैं। वे कभी अविद्या रूप दुख सागर से पार होकर आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकते।

१२. **हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्य अपिहितं मुखम्।**
तत्त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।। (ईशोपनिषद्)

अर्थ–चमक दमक वाले ढकने से सत्य का मुख ढका हुआ है। अपना भला चाहने वाले मनुष्य ! सत्य धर्म को देखने के लिए तू उस ढकन को हटा दे।

१३. **सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।**
येन आक्रमन्ति ऋषयः हि आप्तकामाः यत्र
तत्सत्यस्य परमं निधानम्।। (मुण्डक उपनिषद्)

अर्थ–सत्य की ही जीत होती है, झूठ की नहीं। सत्य पर चलकर ही मनुष्य देवता बनता है। ऋषि लोग सत्य पर चलकर ही परमात्मा को पाकर आनन्द प्राप्त करते हैं।

१४. **श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः।**
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो
योग - क्षेमात् वृणीते।। (कठ उपनिषद्)

अर्थ–श्रेय (कल्याणकारी) तथा प्रेय (प्रिय लगने वाला)–ये दोनों भावनाएं मनुष्य के सामने आती हैं। धीर पुरुष इन दोनों की अच्छी तरह मन से विचार कर परीक्षा करता है। वह प्रेय की अपेक्षा श्रेय को ही चुनता है। धीर पुरुष वह है जो कोई

काम जल्दी में नहीं करता, तत्काल फल नहीं देखता। मन्द बुद्धि व्यक्ति सुख चैन के लिए, आराम से जीवन बिताने के लिए प्रेय को चुनता है।

१५. अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे।

सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिव आजायते पुनः॥ (कठोपनिषद्)

अर्थ–जो तुझसे पहले हो चुके हैं तथा जो तेरे पीछे होंगे उनकी बाबत विचारकर यह मनुष्य अन्न की तरह पैदा होता है, पकता है, नष्ट हो जाता है, और फिर उत्पन्न हो जाता है।

****

५. वैदिक संस्कृति के आधार ग्रन्थ

१. **चार वेद**–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। चारों वेदों का ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में पूर्ण ज्ञानवान् परमेश्वर ने क्रमशः चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा को दिया। उन्होंने यह ज्ञान ब्रह्मा को दिया। फिर आगे आगे अन्य ऋषि मुनियों और मनुष्यों तक पहुंचा जो आज तक चला आ रहा है। वह सब सत्य ज्ञान जिसकी मनुष्य को जरूरत हो सकती है मूल रूप में वेदों में विद्यमान है। तिनके से लेकर मनुष्य, पशु, पक्षी, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, तारे, आत्मा, परमात्मा सबका यथार्थ ज्ञान वेदों में है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो बिना सिखाए नहीं सीखता। इसलिए सृष्टि के आरम्भ में इसे सिखाने की आवश्यकता थी जिसे केवल ईश्वर ही पूरा कर सकता था तथा उसने पूरा किया।

चारों वेद उसी शुद्ध रूप में अब तक सुरक्षित हैं तथा उपलब्ध हैं। वेदों में मिलावट करने का किसी को दुस्साहस नहीं हुआ तथा न ही किसी मनुष्य में ऐसी योग्यता ही हो सकती है। हां, बहुत से लोगों ने अर्थ के नाम पर इनका अनर्थ कर दिया है जिनमें मैक्समूलर जैसे विदेशी तथा महीधर, सायण जैसे स्वदेशी शामिल हैं। इनमें से कुछ ने तो द्वेषवश तथा कुछ ने अज्ञानवश ऐसा किया है। यही कारण है कि पिछले कुछ समय से वेदों के प्रति अश्रद्धा तथा भ्रान्तियां बढ़ गई हैं। मानव समाज का सौभाग्य जानिए कि दयानन्द सरस्वती के रूप में एक महान् ऋषि यहां आए जिन्होंने वेदों का विशुद्ध रूप हमारे सामने रखा जिससे वेदों के ज्ञान का प्रचार तथा वेदों के प्रति श्रद्धा कुछ कुछ फिर बढ़ने लगी है।

सृष्टि के आरम्भ में बने होने के कारण वेदों में कोई भी किसी प्रकार का भी इतिहास नहीं है। वेद केवल ज्ञान के ग्रन्थ हैं। चारों वेदों में कुल मिलाकर बीस हजार दो सौ तेरह (२०२१३) मन्त्र हैं। वेदों में सब बातें बुद्धि और तर्क संगत हैं तथा सृष्टि

नियम के अनुकूल हैं। वेदों की भाषा संस्कृत तथा लिपि देवनागरी है। ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों की व्याख्या के ग्रन्थ हैं। छः शास्त्र भी विद्या के ग्रन्थ हैं।

२. मनुस्मृति–सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा ऋषि हुए। उनके पुत्र विराट् तथा विराट् के पुत्र मनु हुए जिन्होंने मनुस्मृति लिखी। मनुस्मृति में कुछ लोगों ने दुष्टता और स्वार्थ के कारण मिलावट कर दी है। मूल मनुस्मृति वेदानुकूल होने से स्वीकार करने योग्य है। मनुस्मृति में मानवोपयोगी बहुत से विषयों पर प्रकाश डाला गया है। मनुस्मृति को न पढ़ने और न जानने तथा कुछ मिलावटों के कारण भ्रान्तियां फैली हैं। वास्तव में मनुस्मृति ज्ञान का भण्डार है। वेद के पश्चात् मनुस्मृति ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसको पढ़ने से अज्ञान अन्धकार दूर हो जाता है।

मनुस्मृति संस्कृत भाषा में है।

३. उपनिषद्–ग्यारह हैं–ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक तथा श्वेताश्वतर। उपनिषदों में आत्मा-परमात्मा का ज्ञान जिसे अध्यात्मवाद कहते हैं, विस्तार से कथा कहानियों के माध्यम से बड़े ही सरल तथा स्पष्ट ढंग से दिया गया है। उपनिषदों के ज्ञान का मूल वेद है। उनकी भाषा तथा व्याख्यान का ढंग ऐसा है जो साधारण मनुष्यों को भी ग्रहण करना मुश्किल नहीं। ये ग्रन्थ प्राचीन काल में ऋषि-मुनियों ने वनों में योगाभ्यास तथा चिन्तन करते हुए वेद के ज्ञान के अनुसार अपने अनुभव के आधार पर रचे थे। उपनिषद् संस्कृत भाषा में लिखे हैं। अब संसार की बहुत सी भाषाओं में इनका अनुवाद हो चुका है। स्वदेशियों के अतिरिक्त बहुत विदेशियों ने भी उपनिषदों को अत्यन्त सराहा है।

औरंगजेब का भाई दाराशिकोह संस्कृत भाषा के प्राचीन-साहित्य से बहुत प्रभावित हुआ था। उसने उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद भी किया था।

४. वाल्मीकि रामायण–यह हमारा गौरवमय इतिहास ग्रन्थ है, जिसमें बहुत ज्ञान भरा हुआ है। भगवान राम का आदर्श अनुकरणीय जीवन हमारे सामने आता है। श्री रामचन्द्र जी के समकालीन महर्षि वाल्मीकि ने यह ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखा था। मूल बाल्मीकि रामायण में पांच काण्ड थे। अन्त में उत्तर काण्ड किन्हीं दुष्ट स्वार्थी लोगों ने मिला दिए हैं। अन्य स्थानों पर भी मिलावटें हुई हैं जिन्हें बुद्धिमान् व्यक्ति पहचानकर त्याग देते हैं। भगवान् राम त्रेतायुग की समाप्ति के समय हुए थे। जिसे लगभग नौ लाख वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इतना ही समय वाल्मीकि रामायण को बने हो गया है।

तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' अब से लगभग चार सौ वर्ष पहले लिखी गई थी। उसमें बहुत सी बातें वाल्मीकि रामायण के विपरीत, वेदज्ञान तथा सृष्टि नियम के विरुद्ध लिखी गई हैं। इसलिए रामचरित मानस की बजाए वाल्मीकि रामायण ही

पढ़ी जानी चाहिए।

५. महाभारत—यह भी हमारा इतिहास ग्रन्थ है। भगवान कृष्ण की सूझबूझ तथा नीतिमत्ता हमारे लिए मार्गदर्शन हैं। भीष्म पितामह का राजधर्म पर उपदेश अनुकरणीय है। परिवार की आपसी लड़ाई कितनी घातक हो सकती है, यह भी इस ग्रन्थ से भली भांति ज्ञात हो जाता है। मूल ग्रन्थ महर्षि वेद व्यास ने 'जय' नाम से संस्कृत भाषा में रचा था। इस ग्रन्थ में अब बहुत मिलावट हो गई है। आज से लगभग पन्द्रह सौ वर्ष पूर्व राजा भोज हुए हैं। उन्होंने अपने बनाए 'संजीवनी' नाम के इतिहास में लिखा है कि व्यास जी ने चार हजार चार सौ और उनके शिष्यों ने पांच हजार छ: सौ अर्थात्, कुल दस हजार श्लोकों का पुस्तक 'भारत' बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस हजार, महाराज भोज कहते हैं कि मेरे पिता के समय में पच्चीस और मेरी आधी उमर में तीस हजार श्लोक वाला महाभारत मिलता है। ऐसा सुना है कि अब (२००० में) जो महाभारत मिलता है उसमें लगभग एक लाख श्लोक हैं। इस प्रकार की मिलावटों ने हमारे वीरतापूर्ण इतिहास को बिगाड़ करके हमें कायर, दब्बू और कमजोर बना दिया है।

उसी 'संजीवनी' पुस्तक में लिखा है कि राजा भोज के राज्य में व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय और शिव पुराण किसी ने बना दिए। उसका समाचार राजा भोज को मिला। तो राजा ने दण्ड स्वरूप उन पण्डितों के हाथ कटवा दिए और कहा कि जो कोई ग्रन्थ बनावे वह अपने नाम से बनावे, ऋषि मुनियों के नाम से नहीं।

६. 'सत्यार्थप्रकाश'—महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह ग्रन्थ सन् १८८२ में बनाया था। मनुष्य को जन्म से लेकर मरण तक जो जो करने योग्य काम हैं तथा जो न करने योग्य है उनका विवरण वेद के अनुसार दिया गया है। संसार में प्रचलित हिन्दू, मुसलिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन सभी मतमतान्तरों की कमियां बताकर सभी मनुष्यों को सन्मार्ग से न भटकने के लिए सचेत किया गया है। ज्ञान की आंखें खोलने वाला तथा बुद्धि को सक्रिय बनाने वाला यह ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ ने सभी मजहबों के करोड़ों लोगों में वैचारिक क्रान्ति पैदा कर दी है। यह संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाणों सहित आर्य (हिन्दी) भाषा में लिखा हुआ है। अब बहुत सी स्वदेशी तथा विदेशी भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है।

वीर सावरकर के 'सत्यार्थप्रकाश' के सम्बन्ध में उद्गार "हिन्दू जाति की ठण्डी रगों में गर्म खून का संचार करने वाला यह ग्रन्थ अमर रहे, यह मेरी कामना है। 'सत्यार्थप्रकाश' की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।"

****

६. नीति श्लोक

१. यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणामे च यत्।
हितं च परिणामे यत् तदाद्यं भूतिमिच्छता॥ (विदुरनीति)

अर्थ–जो वस्तु खाई जाने योग्य हो, खाई जाने पर पच सके और पच जाने पर लाभकारी हो, अपना भला चाहने वाले व्यक्ति को वही वस्तु खानी चाहिए। (इसी प्रकार से जो कार्य ठीक हो, अच्छी तरह से हो सके और हो जाने पर अच्छा परिणाम दे, वही कार्य करना चाहिए।)

२. न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्॥ (विदुरनीति)

अर्थ–देव ग्वाले के समान हाथ में डण्डा लेकर कभी भी रक्षा नहीं किया करते। वे तो जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसे अच्छी बुद्धि देते हैं।

३. जो किसी मनुष्य की बात को समझ तो तुरन्त ही जाता है पर बात पक्की करने के लिए तथा उसके विषय में और अधिक जानने के लिए अधिक समय तक उस बात को सुनता रहता है, जो व्यक्ति किसी कार्य को खूब अच्छी तरह से समझ लेने पर ही शुरू करता है, केवल इच्छा के कारण ही उसे करने नहीं लग जाता, वही पंडित होता है। (विदुरनीति)

४. उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात् कस्य न स्यान्महोदयः॥ (चाणक्यनीति)

अर्थ–गलत काम करने के पीछे पछताने वाले पुरुष की जैसी बुद्धि होती है, वैसी यदि पहले होती तो किसकी बड़ी समृद्धि न होती अर्थात् अवश्य होती।

५. न निर्मितो केन न दृष्टपूर्वो न श्रूयते हेममयो कुरङ्गः।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः॥ (चाणक्यनीति)

अर्थ–सोने का मृग न पहले किसी ने बनाया, न देखा और न किसी ने सुना है। फिर भी श्री रामचन्द्र जी की तृष्णा सोने के मृग पर हुई। विनाश के समय बुद्धि विपरीत (उलटी) हो जाती है।

६. अधः पश्यसि किं बाले पतितं तव किं भुवि।
रे रे मूर्ख न जानासि गतं तारुण्यमौक्तिकम्॥ (चाणक्यनीति)

अर्थ–हे बाले ! नीचे को क्या देखती हो, तुम्हारा भूमि पर क्या गिर पड़ा है? (कमर झुकी हुई बुड्ढी स्त्री को देखकर किसी ने कहा) स्त्री ने उत्तर दिया–रे रे

मूर्ख नहीं जानता कि मेरा यौवन रूपी मोती चला गया है।

७. दर्शनध्यान संस्पर्शैर्मत्सी कूर्मी च पक्षिणी।
शिशुम्पालयते नित्यं तथा सज्जनसंङ्गतिः॥ (चाणक्यनीति)

अर्थ–मछली, कछुई और पक्षिणी क्रमशः दर्शन, ध्यान और स्पर्श से जैसे अपने बच्चों को सदैव पालती हैं, वैसे ही सज्जनों की संगति मनुष्य को पालती है।

८. कार्य करने से पहले उसके परिणाम पर विचार कर लेना चाहिए। बिना विचारे शीघ्रता से किए गए काम का फल जीवन भर हृदय को जलाता रहता है तथा कांटे की तरह चुभता रहता है।(भर्तृहरि)

६. छिन्नोऽपिरोहति तरुः क्षीणोप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः संतप्यन्ते न विपत्त्या लोके॥ (भर्तृहरि)

अर्थ–काटा हुआ वृक्ष फिर पनपता है, क्षीण चन्द्रमा फिर पूरा हो जाता है, यही देख सज्जन लोग विपत्ति से नहीं घबराते।

१०. कर्णी बाण और नालीक बाण (तीर, गोली आदि) शरीर से निकाले जा सकते हैं, परन्तु वचन रूपी बाण लग जाने पर निकालना बिल्कुल असम्भव है क्योंकि वह हृदय में घुसा रहता है। (विदुरनीति)

11. वचन रूपी जो बाण मुख से निकलते हैं, उन बाणों द्वारा घायल व्यक्ति रात दिन सोच करता रहता है। वे बाण केवल मर्मस्थल में चोट पहुँचाने वाले होते हैं, किसी दूसरी जगह चोट नहीं पहुँचाते। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति कभी भी कटु वचनों का किसी के प्रति व्यवहार नहीं किया करते हैं। (विदुरनीति)

१२. परिमित भोजन करने वाले मनुष्य को ये छः गुण प्राप्त होते हैं–

१. स्वस्थता, २. आयु, ३. बल, ४. सुख, ५. इस प्रकार के मनुष्य की सन्तान निष्पाप होती है, और ६. दुनिया उसे यह नहीं कहती कि यह बड़पेटू है। (विदुरनीति)

१३. शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने॥ (चाणक्यनीति)

अर्थ–सब पर्वतों पर रत्न नहीं होता, मोती सब हाथियों में नहीं मिलता, न सज्जन लोग सब जगह होते हैं, न प्रत्येक वन में चन्दन होता है।

१४. यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते संघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते, त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा॥
(चाणक्यनीति)

अर्थ–जैसे घिसने, काटने, तपाने और पीटने–इन चार प्रकार से सोने की परीक्षा की जाती है, वैसे ही दान, शील, गुण और आचरण इन चारों प्रकार से पुरुष की भी परीक्षा की जाती है।

१५. गुप्त दान देना, घर में आए सत्पुरुषों का स्वागत करना, उपकार करके चुप रहना, कृतज्ञता प्रकट करना, धन पाकर गर्व न करना और पराई चर्चा में उसके मानापमान का ध्यान रखना—ये तलवार की धार पर चलने के समान कठिन व्रत का सत्पुरुषों को न मालूम किसने उपदेश दिया है। (भर्तृहरि)

१६. निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥ (भर्तृहरि)

अर्थ—नीति को जानने वाले लोग चाहे निन्दा करें या प्रशंसा, धन आए या जाए, मृत्यु अभी आ जाए या चिरकाल के बाद आए परन्तु धैर्यवान् लोग न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होते।

१७. पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥ (विदुरनीति)

अर्थ—हे धृतराष्ट्र ! इस संसार में दूसरों को निरन्तर प्रसन्न करने के लिए प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं, परन्तु सुनने में अप्रिय लगे और वह भला करने वाला वचन हो उसका कहने और सुनने वाला पुरुष कठिनाई से मिलता है।

१८. सत्यं मृदु प्रियं वाक्यं धीरो हितकरं वदेत्।
आत्मोत्कर्षं तथा निन्दां परेषां परिवर्जयेत्॥

अर्थ—धीर बुद्धिमान् मनुष्य सदा सत्य, मृदु, प्रिय और हितकर वाक्य ही बोले। अपनी तारीफ करने वाले तथा दूसरों की निन्दा करने वाले वाक्य कभी न बोले।

१९. ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्॥

अर्थ—देना, लेना, गुप्त बातों का बताना, सम्मति पूछना, खाना और खिलाना—ये छः प्रेम के लक्षण हैं।

२०. पूर्वोपकारी यस्ते स्यादपराधे गरीयसि।
उपकारेण तत्तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः॥

अर्थ—जिसने तुम्हारे साथ पहले कभी उपकार किया हो, पहले किए हुए उपकार को याद करके उसके बड़े भारी अपराध को भी माफ कर दो।

२१. जो व्यक्ति मार्ग में चलते हुए थके हुए दुःखी मुसाफिर को अन्न देता है, और जिसको पहले न जानता हो, ऐसे को अन्न देने वाले को बड़ा भारी पुण्य लगता है।

****

७. भजनावली

१

हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिए।
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिए।।
कीजिए ऐसा अनुग्रह हम पे हे परमात्मा।
हों सभासद इस सभा के सब के सब धर्मात्मा।।
हो उजाला सब के मन में ज्ञान के प्रकाश से।
और अन्धेरा दूर सारा हो अविद्या नाश से।।
खोटे कर्मों से बचें और तेरे गुण गावें सभी।
छूट जावें दु:ख सारे सुख सदा पावें सभी।।
सारी विद्याओं को सीखें ज्ञान से भरपूर हों।
शुभ कर्म में होवें तत्पर दुष्ट गुण दूर हों।।
यज्ञ हवन से हो सुगन्धित अपना भारतवर्ष देश।
वायु जल सुखदायी होवें जाएं मिट सारे क्लेश।।
वेद के प्रचार में होवें सभी पुरुषार्थी।
होवे आपस में प्रीति और बनें परमार्थी।।
लोभी कामी और क्रोधी कोई भी हम में न हो।
सर्व व्यसनों से बचें और छोड़ देवें मोह को।।
अच्छी संगत में रहें और वेद मार्ग पर चलें।
तेरे ही होवें उपासक और कुकर्मों से बचें।।
कीजिए हम सब का हृदय शुद्ध अपने ज्ञान से।
मान भक्तों में बढ़ाओ अपने भक्ति दान से।।

२.

जिस दिन वेद के मन्त्रों से धरती को सजाया जाएगा।
उस दिन मेरे गीतों का त्यौहार मनाया जाएगा।।
खेतों में सोना उपजेगा झूमेगी डाली डाली।
वीरानों की कोख से पैदा जिस दिन होगी हरियाली।।
विधवाओं के मस्तक पर फैलेगी जिस दिन लाली।
निर्धन की कुटिया में जिस दिन दीप जलाया जाएगा।।
खलिहानों की खाली झोली भर जाएगी मेहनत से।
इन्सानों की मजबूरी जब टकराएगी दौलत से।।

सदियों का मासूम लड़कपन जाग उठेगा गफलत से।
भूखे बच्चों को जिस दिन भूखा न सुलाया जाएगा।।
जिस दिन काले बाजारों में रिश्वतखोर नहीं होंगे।
जिस दिन मदिरा के सैदाई तन के चोर नहीं होंगे।।
जिस दिन सच कहने वालों के दिल कमजोर नहीं होंगे।
झूठी रस्मों को जिस दिन नीलाम कराया जाएगा।।
वीर शहीदों की जिस दिन कुर्बानी की पूजा होगी।
बिस्मिल और सुभाष की जब जिन्दगानी की पूजा होगी।
वीर शिरोमणि लक्ष्मीबाई रानी की पूजा होगी।
दयानन्द के सपनों को साकार बनाया जाएगा।।

३.

अजब हैरान हूँ भगवन् ! तुम्हें क्योंकर रिझाऊँ मैं।
कोई वस्तु नहीं ऐसी जिसे सेवा में लाऊँ मैं।।
करें किस तौर आवाहन कि तुम मौजूद हो हर जां।
निरादर है बुलाने को अगर घण्टी बजाऊँ मैं।।
तुम्हीं हो मूर्ति में भी तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
भला भगवान् पर भगवान् को क्यों कर चढ़ाऊँ मैं।।
लगाना भोग कुछ तुझ को, यह एक अपमान करना है।
खिलाता है जो सब जग को, उसे क्योंकर खिलाऊँ मैं।।
तुम्हारी ज्योति से रोशन हैं, सूरज चान्द और तारे।
महा अन्धेर है कैसे तुम्हें दीपक दिखाऊँ मैं।।
भुजाएं हैं न गर्दन है न सीना है न पेशानी।
तुम हों निर्लेप नारायण ! कहां चन्दन लगाऊँ मैं।

४.

इश्क जिनको है अपने वतन से।
वे खुदी को मिटाते रहेंगे।
शमा महफिल में जलती रहेगी।
तो पतंगे भी आते रहेंगे।
इश्क करने से आता नहीं है।
इसका बुजदिल से नाता नहीं है।
सच्चे आशिक जो अपने सरों को।
वो खुशी से कटाते रहेंगे।।

इश्क करने का है जो तरीका।
उसको आजाद बिस्मिल ने सीखा।।
उनका दुनिया से जाना न समझो।
वो सदा याद आते रहेंगे।
छोड़कर चल दिए अशियां जो।
उनकी दुनिया चमन बन गई है।।
जिसमें इन्सानियत न दफन हो।
वो ऐसी दुनिया बसाते रहेंगे।।

५.

तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया।
वाणी से जाय वह क्यों कर बताया।।
नहीं है यह वह रस, जिसे रसना चाखे।
नहीं रूप उसका, न दृष्टि में आया।।
नहीं है वह गुण गन्ध, जिसे घ्राण जाने।
त्वचा से ना जाए वह छुआ छुआया।।
गूंगे की रसना के सदृश "अमीचन्द"।
कैसे बताएं, कि क्या स्वाद आया।।

६.

तुम हो प्रभु चांद, मैं हूँ चकोरा।
तुम हो कमल फूल, मैं रस का भौंरा।।
ज्योति तुम्हारी का मैं हूँ पतंगा।
आनन्द धन तुम हो, मैं वन का मोरा।।
जैसे है चुम्बक को लोहे से प्रीति।
आकर्षण करे मोहि लगातार तोरा।
पानी बिना जैसे हो मीन व्याकुल।
ऐसे ही तड़पाए तुम्हारा बिछोड़ा।।
एक बूंद जल का मैं प्यासा हूँ चातक।
करो अमृत वर्षा हरो ताप मोरा।।

****

अध्याय ८

महापुरुष

१. मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम

श्री राम अयोध्या के राजा थे। वे बड़े प्रतापी, सहनशील, धर्मात्मा, प्रजापालक, निष्पाप, निष्कलंक थे। उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम भी कहा जाता है। क्योंकि उन्होंने मानव समाज के लिए आदर्श व्यवहार की मर्यादाएँ स्थापित कीं। वे आज से लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व त्रेतायुग के अन्त में हुए थे। उनके समकालीन महर्षि वाल्मीकि ने रामायण के अन्दर उनका जीवन चरित्र दिया है।

महर्षि वाल्मीकि अपने आश्रम में बैठे थे। घूमते हुए नारद मुनि वहां पहुँचे। तब वाल्मीकि ने नारद से पूछा कि–इस संसार में वीर, धर्म को जानने वाला, कृतज्ञ, सत्यवादी, सच्चरित्र, सब प्राणियों का हितकारी, विद्वान्, उत्तम कार्य करने में समर्थ, सब के लिए प्रिय दर्शनीय, जितेन्द्रिय, क्रोध आने पर देव भी जिससे भयभीत हों ऐसा मनुष्य कौन है, यह जानने की मुझे उत्सुकता है। तब नारद मुनि ने ऐसे बहुत से दुर्लभ गुणों वाले श्री राम का वृत्तांत सुनाया।

महाराजा दशरथ ने श्री राम को युवराज बनाने का अपना विचार सारी परिषद् के सामने रखा। तब परिषद् ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए श्री राम के गुणों का वर्णन इस प्रकार किया 'प्रजा को सुख देने में श्री राम चन्द्रमा के तुल्य हैं,..... वे धर्मज्ञ, सत्यवादी, शीलयुक्त, ईर्ष्या से रहित, शान्त, दुखियों को सान्त्वना देने वाले, मधुरभाषी, कृतज्ञ और जितेन्द्रिय हैं।.......मनुष्यों पर कोई आपत्ति आने पर वह स्वयं दुःखी होते हैं और उत्सव के समय पिता की भांति प्रसन्न होते हैं।........उनका क्रोध और प्रसन्नता कभी निरर्थक नहीं होते। वे मारने योग्य को मारते हैं और निर्दोषों पर कभी क्रोध नहीं करते।

श्री राम के गुणों का वर्णन कैकेयी ने स्वयं किया है। जब श्री राम को राजतिलक देने का निर्णय हुआ तब सभी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। कैकेयी को यह समाचार उसकी दासी ने जाकर दिया। तब कैकेयी आनन्द विभोर हो गई और एक बहुमूल्य हार कुब्जा को देकर कहने लगी–"हे मन्थरे ! तूने यह अत्यन्त आनन्ददायक समाचार सुनाया है। इसके बदले में मैं तुम्हें और क्या दूँ।" परन्तु मन्थरा ने द्वेष से

भरकर कहा कि राम के राजा बनने से तेरा, भरत का और मेरा हित न होगा। तब कैकेयी राम के गुणों का वर्णन करती हुई कहती है–''राम धर्मज्ञ, गुणवान्, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और पवित्र हैं तथा बड़े पुत्र होने के कारण वे ही राज्य के अधिकारी हैं। राम अपने भाईयों और सेवकों का अपनी सन्तान की तरह पालन करते हैं।''

श्री राम की महत्ता वशिष्ठ के शब्दों में–

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।

न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः॥ (वाल्मीकि रामायण)

अर्थ–राज्याभिषेक के लिए बुलाए गए और वन के लिए विदा किए गए श्री राम के मुख के आकार में मैंने कोई भी अन्तर नहीं देखा। राज्याभिषेक के अवसर पर उनके मुख मण्डल पर कोई प्रसन्नता नहीं थी और वनवास के दु:खों से उनके चेहरे पर शोक की रेखाएं नहीं थी।

उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।

सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥

अर्थ–सूर्य उदय होता हुआ लाल होता है और अस्त होता हुआ लाल होता है। इसी प्रकार महापुरुष सम्पत्ति और विपत्ति में समान ही रहते हैं। सम्पत्ति प्राप्त होने पर हर्षित नहीं होते और विपत्ति पड़ने पर दु:खी नहीं होते।

वन को जाते हुए श्री राम अयोध्यावासियों से कहते हैं–''आप लोगों का मेरे प्रति जो प्रेम तथा सम्मान है मुझे प्रसन्नता तभी होगी अगर आप वह अब भरत के प्रति करें।''

अपने नाना के यहां से अयोध्या लौटने पर जब भरत ओर शत्रुघ्न को पता लगा कि सारे पाप की जड़ मन्थरा है। शत्रुघ्न को उस पर बहुत क्रोध आया और मन्थरा को पकड़ लिया और उसे भूमि पर पटक कर घसीटने लगा। तब भरत ने कहा–यदि इस कुब्जा के मारने का पता श्री राम को चल गया तो वह धर्मात्मा तेरे से और मेरे से बात तक न करेंगे। यह थी श्री राम की महानता।

हनुमान जी अशोक वाटिका में सीता से श्री रामचन्द्र जी की बाबत कहते हैं–

यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सु पूजितः।

धनुर्वेदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठितः॥ (वाल्मीकि रामायण)

अर्थ–श्री रामचन्द्र जी यजुर्वेद में पारंगत हैं और बड़े-बड़े ऋषि भी इसके लिए उनको मानते हैं तथा वे धनुर्वेद और वेद वेदांगों में भी प्रवीण हैं।

****

२. योगेश्वर श्री कृष्ण

श्री कृष्ण जी महात्मा, धर्मात्मा, धर्मरक्षक, दुष्टनाशक, परोपकारी, सदाचारी श्रेष्ठ पुरुष थे। आज से लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व कौरव पाण्डव के समय में वे हुए थे। उस समय के महर्षि वेद व्यास रचित ग्रन्थ 'महाभारत' में श्रीकृष्ण जी का बड़ा ही पवित्र जीवन चरित्र मिलता है। बहुत बाद में किसी धूर्त, स्वार्थी व्यभिचारी व्यक्ति ने 'भागवत पुराण' नाम से पुस्तक लिख दी जिसमें उसने श्री कृष्ण जी के जीवन के साथ बहुत सी गलत बातें जोड़ दीं—सम्भवतः उसने अपने दोषों को ढांपने के लिए, ऐसा किया।

महर्षि दयानन्द के शब्दों में 'सत्यार्थप्रकाश' से—"देखो ! श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्री कृष्ण जी में लगाए हैं। इसको पढ़ पढ़ा, सुन सुना के अन्य मतवाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों कर होती।"

महाभारत के अनुसार श्री कृष्ण जी की एक पत्नी थी—रुक्मिणी। वे बहुत उच्च कोटि के संयमी थे। उत्तम सन्तान की इच्छा से विवाह के पश्चात् वे तथा उनकी पत्नी रुक्मिणी बारह वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे थे। उसके पश्चात् उन्हें जो पुत्र प्राप्त हुआ प्रद्युम्न वह तेज और बल में श्री कृष्ण जी के समान था।

श्री कृष्ण जी ने प्रजा हित में दुष्ट, अन्यायकारी, स्वेच्छाकारी राजा कंस का वध कर उसके धर्मात्मा, प्रजापालक पिता उग्रसेन को मथुरा का शासक बनाया। जरासंध, जिसने एक सौ के करीब धर्मात्मा, सदाचारी, परोपकारी राजाओं को बन्दी बना रखा था, को पाण्डवों की सहायता से समाप्त कर उन राजाओं को मुक्त करवाया। श्री कृष्णजी की नीतिमत्ता तथा सूझबूझ से ही कम शक्ति के होते हुए भी पाण्डवों को कौरवों पर विजय प्राप्त हुई थी।

पाण्डव जुए में हारकर वन को चले गए थे। श्री कृष्ण जी को पता लगा और तब वे उन्हें वन में मिलने गए। उन्होंने कहा—"मैं द्वारिका में न था, यदि होता तो हस्तिनापुर अवश्य आता और जुआ कभी न होने देता। धृतराष्ट्र और दुर्योधन को अनेक दोष दिखा कर जुए से रोकता।"

प्रजा में सर्वप्रिय हो जाने पर युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया। उन्होंने अपने भाईयों से तथा व्यास आदि महात्माओं व सम्बन्धियों से सलाह मांगी। सभी ने सहमति प्रकट की। परन्तु युधिष्ठिर को तसल्ली न हुई उन्हें श्री कृष्ण जी पर ही भरोसा था। उन्हें ही वे सर्वश्रेष्ठ मानते थे। उन्होंने श्री कृष्ण जी को बुलवाकर कहा–''मेरे भाईयों और मित्रों ने राजसूय यज्ञ करने की सम्मति दी है, परन्तु मैंने आपसे पूछे बिना उसका निश्चय नहीं किया है। हे कृष्ण ! कोई तो मित्रता के कारण मेरे दोष नहीं बताता, कोई स्वार्थवश मीठी मीठी बातें कहता है और कोई अपनी स्वार्थ सिद्धि को ही प्रिय समझता है। हे महात्मन् ! इस पृथिवी पर ऐसे मनुष्य ही अधिक हैं। इसलिए आप मुझे ठीक ठीक सलाह दें।'' यह थी भगवान् श्री कृष्ण की महत्ता। भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया–''महान् पराक्रमी राजा जरासंध के जीते रहते आपका राजसूय यज्ञ सफल नहीं हो सकता।''

राजसूय यज्ञ आरम्भ होने पर भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा कि उपस्थित राजाओं में से जो सबसे श्रेष्ठ हो उसे ही पहले अर्घ्य दिया जाना चाहिए। युधिष्ठिर ने भीष्म से ही पूछा कि ऐसा कौन है जो पहले अर्घ्य पाने का पात्र है। इस पर भीष्म ने कहा–''जैसे सब ज्योतिमालाओं में सूर्य सबसे अधिक प्रकाशमान है वैसे ही इन सब राजाओं में श्री कृष्ण ही तेज, बल, पराक्रम में अति प्रकाशित दीख पड़ते हैं। अतः वे ही अर्घ्य के उपयुक्त पात्र हैं।'' भीष्म की सम्मति के अनुसार युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर सहदेव ने श्री कृष्ण जी को अर्घ्य प्रदान किया। शिशुपाल से श्री कृष्ण जी का यह सम्मान सहन न हुआ। उसने इस कार्य को अनुचित बताते हुए भीष्म, युधिष्ठिर और श्री कृष्ण जी के विरोध में बहुत कुछ कहा। तब भीष्म पितामह ने उसे शान्त करने के लिए श्री कृष्ण जी के अधिकारी होने के कारण उनके गुणों का वर्णन इस प्रकार किया–''यहां मैं किसी ऐसे राजा को नहीं देखता जिसे कृष्ण ने अपने अतुल तेज से न जीता हो। वेद वेदांग का ज्ञान और बल पृथिवी के तल पर इनके समान किसी और में नहीं। इनका दान, कौशल, शिक्षा, ज्ञान, शक्ति, शालीनता, नम्रता, धैर्य और सन्तोष अतुलनीय हैं।............अतः ये अर्घ्य के पात्र हैं।''

श्री कृष्ण जी सदा सत्य और न्याय पर चलने वाले थे। वे रूढ़ियों और गलत बातों को स्वीकार न करते थे। वे क्रान्ति के अग्रदूत थे। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने आत्मा की अमरता का, निष्काम कर्म करने का तथा कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का उपदेश दिया जो गीता के रूप में हमारे सामने है। जैसे महाभारत में बहुत मिलावट हो गई है ऐसे ही गीता में भी है जिससे सावधान रहने की जरूरत है। गीता महाभारत का ही एक भाग है।

****

३. महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् १८२४ में गुजरात प्रान्त की मौरवी रियासत में हुआ था। उन्होंने चौदह वर्ष की आयु में शिव मंदिर में शिवलिंग की पूजा करते हुए उस पर चढ़े चूहे को देखकर मूर्ति पूजा का निरर्थक होना महसूस किया। उसके पश्चात् अपनी छोटी बहिन तथा चाचा की मृत्यु को देखकर मृत्यु के भय से बचने का उपाय सोचना आरम्भ कर दिया। इक्कीस वर्ष की आयु में घर छोड़ दिया। बहुत से योगियों से योग सीखा तथा विद्वानों से विद्या पढ़ी। भ्रमण भी बहुत किया परन्तु सन्तुष्टि न हुई। अन्त में छत्तीस वर्ष की आयु में मथुरा जाकर स्वामी विरजानन्द जी से अढ़ाई वर्ष तक व्याकरण तथा अन्य आर्ष ग्रन्थ पढ़े। उसके पश्चात् ही वे कार्यक्षेत्र में उतरे।

महर्षि दयानन्द की भारत को देन–

१. वेद–लोग वेद का नाम मात्र जानते थे। यह नहीं जानते थे कि वेद के अन्दर है क्या ? वेद बेकार तथा गड़रियों के गीत कहे जाने लगे थे। स्वामी दयानन्द ने डंके की चोट से घोषणा की कि सभी सत्य विद्याएं वेद के अन्दर हैं जो सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने सभी मनुष्यों के कल्याण के लिए दिया तथा वेद के अन्दर कुछ भी गलत या निरर्थक नहीं है। उन्होंने वेद को स्वतः प्रमाण माना। जो बात वेदानुकूल वह ठीक और जो वेद विरुद्ध उसे गलत बताया।

२. शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार–ब्राह्मणों ने यहां तक कि शंकराचार्य तथा रामानुज आदि आचार्यों ने भी शूद्रों को वेद पढ़ने का अधिकार न दिया। परन्तु महर्षि दयानन्द ने घोषणा की कि वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को है। जैसे ईश्वर के दिए हुए सूर्य का प्रकाश और गर्मी और हवा आदि उपभोग करने का अधिकार सबको है। ऐसे ही ईश्वरीय ज्ञान वेद पढ़ने का अधिकार सबको है, शूद्रों को भी है।

३. ब्रह्मचर्य–आर्यों में बाल विवाह का प्रचलन और ब्रह्मचर्य का लोप हो जाने से शारीरिक बल कम हो रहा था। आर्य जाति औरों की तुलना में कमजोर मानी जाने लगी थी। इसी कारण से उसे समय समय पर अपमानित भी होना पड़ा। महर्षि दयानन्द ने इसके विरुद्ध प्रबल आवाज उठाई। अपने जीवन से तथा उपदेशों से ब्रह्मचर्य का सिक्का बिठा दिया।

बाल विवाह के कारण देश में करोड़ों बाल विधवाएं थीं जिनमें एक-एक, दो-दो वर्ष की बच्चियां भी थीं। बाल विवाह के विरुद्ध प्रचार करके तथा विधवा विवाह की वकालत करके देश से इस पाप को मिटाया।

४. स्त्रियों की स्थिति–समाज में स्त्रियों का सम्मान न था। आदि गुरु शंकराचार्य ने उन्हें 'नरक का द्वार' बताया। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा "ढोल गंवार शूद्र अरु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।" महर्षि दयानन्द ने उन्हें सम्मान के योग्य बताया तथा महर्षि मनु के अनुसार घोषणा की–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवना:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रिया॥

अर्थ–जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उस घर में उत्तम गुण, उत्तम सन्तान होते हैं। जिस घर में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता उस घर में चाहे कुछ भी यत्न करो सुख की प्राप्ति नहीं होती।

ऋषि दयानन्द के आने से पहले, स्त्रियों को परदे में रखा जाता था। तथा उन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाता था। महर्षि ने स्त्रियों की शिक्षा की जोरदार वकालत की। उन्होंने कहा कि स्त्रियों को सम्मान दिलाने के लिए, सन्तान की उत्तम शिक्षा के लिए तथा समाज की उन्नति के लिए स्त्रियों को शिक्षित करना परम आवश्यक है।

५. जातपात–जन्म की जातपात के कारण समाज में बहुत तगड़ी फूट पड़ गई है। समाज बहुत बंट गया है। अलग-अलग खान पान, विवाह आदि व्यवहार पैदा हो गए हैं। समाज विघटित हो गया है।

महर्षि दयानन्द ने जन्म की जातपात का घोर विरोध किया। उन्होंने इसे वेद विरुद्ध बताया। उन्होंने गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि जो विद्या नहीं पढ़ा है वह शूद्र है चाहे वह ब्राह्मण के घर पैदा हुआ हो। और जो पढ़ा लिखा विद्वान् है वह ब्राह्मण है चाहे वह शूद्र के घर पैदा हुआ हो।

६. हिन्दी प्रचार–हिन्दी भाषा उर्दू और अंग्रेजी की वेदी पर बलिदान हो चुकी थी। हिन्दी गन्दी कहलाने लगी थी। हिन्दी पुस्तक और हिन्दी अखबार पढ़ना फैशन के विरुद्ध समझा जाने लगा था। महर्षि दयानन्द ने स्वयं गुजराती होते हुए भी हिन्दी को अपनाया तथा हिन्दी भाषा को ही सारे देश की भाषा बनाने के लिए प्रचार किया। सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कार विधि आदि अपने ग्रन्थ उन्होंने हिन्दी में ही लिखे। राष्ट्र की एकता के लिए भाषा की एकता को वे परम आवश्यक मानते थे।

७. विधर्मियों से टक्कर–वैदिक धर्म के विरोधियों से उन्होंने जमकर टक्कर ली। अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' **में एक पूरा समुल्लास (अध्याय) ईसाइयों के सम्बन्ध में बाईबल के आधार पर दिया और** एक पूरा समुल्लास **मुसलमानों के**

सम्बन्ध में कुरान के आधार पर दिया। उनमें जो बातें सृष्टि नियम, विज्ञान, बुद्धि और तर्क के विरुद्ध हैं वे दिखाकर के सिद्ध किया कि बाईबल और कुरान गलत बातों से भरी पड़ी हैं। इस कारण से ये न ईश्वर ने बनाई हैं और न ही विद्वानों ने बनाई हैं। महर्षि दयानन्द के तर्क की वे काट न कर सके। इस प्रकार उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वैदिक धर्म ही संसार में एकमात्र सच्चा धर्म है।

महान् विद्वान् होने के साथ-साथ स्वामी दयानन्द बहुत बड़े योगी भी थे। वे आदित्य ब्रह्मचारी थे। शारीरिक बल, मानसिक बल, बुद्धि बल तथा आत्मिक बल उनमें गजब का था। स्वराज्य प्राप्ति की तथा राष्ट्रीयता की भावना उनमें कूटकूट कर भरी हुई थी। वे एक ईश्वर को मानते थे। मूर्ति पूजा को सभी बुराईयों की जड़ मानते थे। वे कहते थे कि जड़ पूजा करने वालों की बुद्धि भी जड़ हो जाती है। दूध और बैलों की प्राप्ति के लिए गाय को देश का आर्थिक आधार मानते थे। गोहत्या बन्द करवाने के लिए उन्होंने हस्ताक्षर अभियान चलाया, 'गोकरुणानिधि' नाम की पुस्तक लिखी तथा 'गोकृष्यादि रक्षिणी सभा' की स्थापना की। हस्ताक्षर अभियान के दौरान ही १८८३ में दीपावली की सायं उनकी मृत्यु हो गई।

****